धर्म एवं अध्यात्म के तत्वज्ञान का वैज्ञानिक विश्लेषण

अखण्ड ज्योति

www.awgp.org | वर्ष-82 | अंक-5 | ₹-15 प्रति | ₹-180 वार्षिक | मई-2018

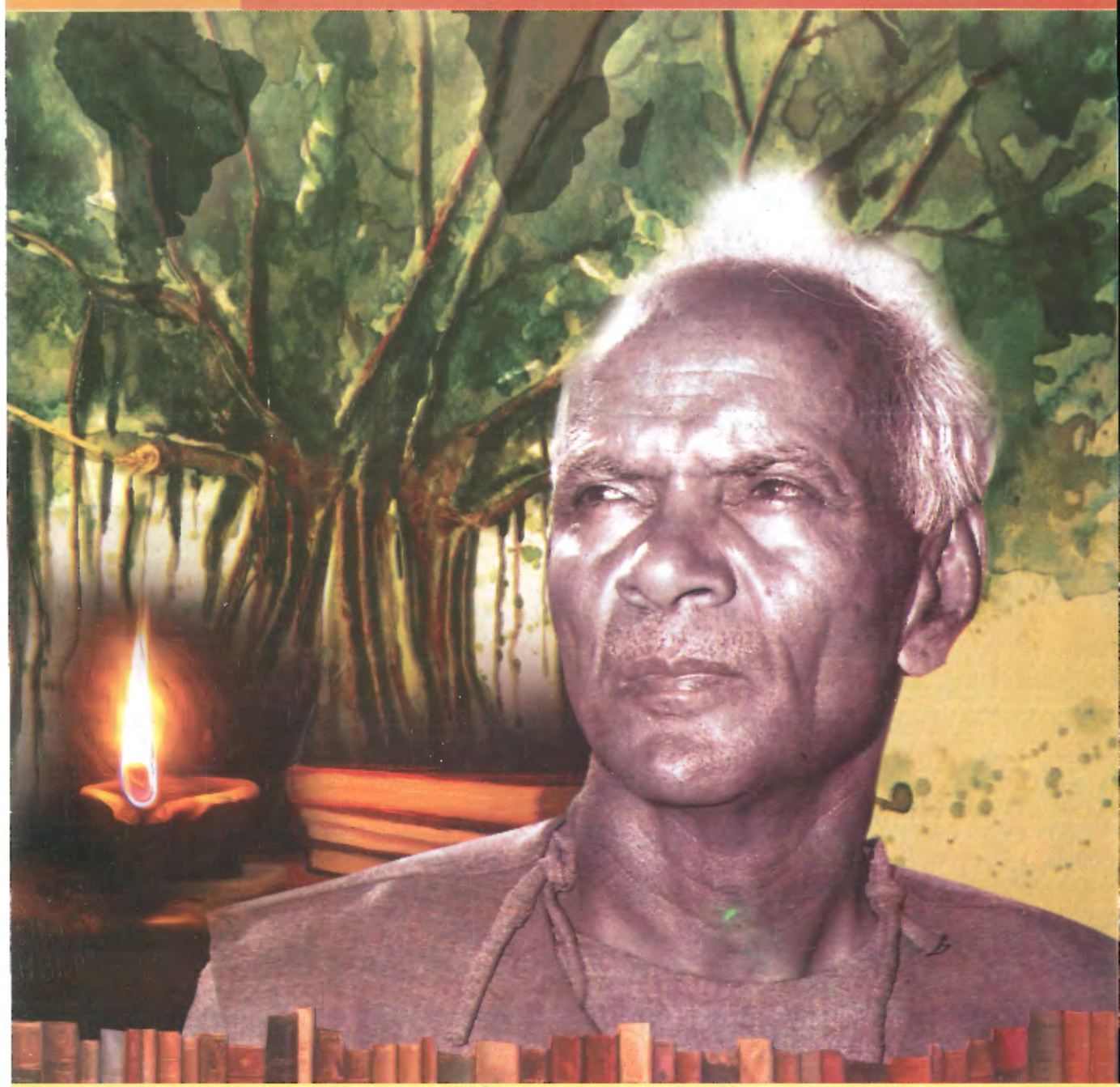

5 भारतीय आर्ष साहित्य का अनुपम विस्तार

15 रहस्यमय दीपकों की गाथाएँ

22 जीवन को उमंगित रखने का अवसर हैं पर्व

33 वैराग्य के अभ्यास से सधता है मन

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।
उस प्राणस्वरूप, दुःखनाशक, सुखस्वरूप, श्रेष्ठ, तेजस्वी, पापनाशक, देवस्वरूप परमात्मा को हम अपनी अंतरात्मा में धारण करें। वह परमात्मा हमारी बुद्धि को सन्मार्ग में प्रेरित करे।

संस्थापक-संरक्षक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
एवं
शक्तिस्वरूपा माता
भगवती देवी शर्मा
संपादक
डॉ० प्रणव पण्ड्या
कार्यालय
अखण्ड ज्योति संस्थान
घीयामंडी, मथुरा
दूरभाष नं० (0565) 2403940
2400865, 2402574
मोबाइल नं० 9927086291
7534812036
7534812037
7534812038
7534812039
फैक्स नं० (0565) 2412273
कृपया इन मोबाइल नंबरों पर एस. एम. एस. न करें।
ईमेल-ajsansthan@awgp.org
प्रातः 10 से सायं 6 तक

वर्ष	: 82
अंक	: 05
मई	: 2018
ज्येष्ठ	: 2075
प्रकाशन तिथि	: 01.04.2018

वार्षिक चंदा

भारत में	: 180/-
विदेश में	: 1400/-

भारत में आजीवन : 3500/-
(सुरक्षा निधि)

मन

पदार्थ या जड़ के तीन आयाम हैं : ठोस, तरल एवं वाष्प। वही जल ठोस होता है तो बरफ बन जाता है, हिमखंड बन जाता है, तरल अवस्था में तो वह जल है ही और गरम होने पर वही वाष्प बन जाता है। हमारे मन के भी ऐसे ही तीन आयाम हैं—चेतन मन, अचेतन मन एवं पराचेतन मन। जागरण की, चिंतन-मनन की गतिविधियाँ—चेतन मन से संबंध रखती हैं, निद्रा व स्वप्न संबंध रखते हैं—अचेतन मन से तो ध्यान, अनुभूतियाँ, समाधि का संबंध पराचेतन मन से है। इनको स्थूलशरीर, सूक्ष्मशरीर एवं कारणशरीर के तलों के समकक्ष भी माना जा सकता है।

हम अपने जीवन का एक-तिहाई हिस्सा सोते हुए गुजारते हैं, उसके बावजूद उस आयाम का हमारा अनुभव बहुत गहरा नहीं है। हमारे जीवन की सारी ऊर्जा, हमने चेतन मन के प्रयासों पर केंद्रित कर दी है एवं अन्य दोनों तलों व आयामों से हम संबंध-विच्छेद करके बैठे हैं; जबकि हमारे व्यक्तित्व को समग्रता, अन्य तलों से मिलती है। इनमें से भी पराचेतन का मूल्य-महत्त्व सबसे ज्यादा है, क्योंकि हमारे जीवन में बोध, ज्ञान, समाधि वहीं से अवतरित होते हैं।

पराचेतन मन से संबंध बनाने के लिए अंत:करण का प्रेम से सिक्त होना जरूरी है। भावनाएँ सकारात्मक होती हैं तो वे प्रेम में बदल जाती हैं, जब प्रेम दिव्यता से जुड़ता है तो वह श्रद्धा बन जाता है और जब श्रद्धा से अहंकार तिरोहित हो जाता है तो वे भावनाएँ भक्ति में एवं समर्पण में बदल जाती हैं। उस अवस्था में एक परम शून्यता व्यक्तित्व में विराजमान हो जाती है और फिर इस परम शून्यता में परमात्मा की उपस्थिति का अनुभव होता है। यह अनुभव ही समाधि है, यही कैवल्य है। इस अनुभव को प्राप्त करने के लिए पराचेतन मन से हमारा निरंतर संपर्क जरूरी है। इसी आयाम को प्रकाशित करने की आवश्यकता हमें सदा से है। ❑

विषय सूची

- मन 3
- **विशिष्ट सामयिक चिंतन**
  भारतीय आर्ष साहित्य का अनुपम विस्तार 5
- शक्ति जागरण के त्रिविध उपाय 8
- लोकहित के लिए जिएँ जीवन 10
- **पर्व विशेष** (वट सावित्री)
  भारतीय संस्कृति के
  गौरवशाली अतीत का प्रतीक पर्व 13
- रहस्यमय दीपकों की गाथाएँ 15
- वृक्ष बचेंगे तो ही जीवन बचेगा 17
- **अंतर्जगत की यात्रा का ज्ञान-विज्ञान—4**
  नहीं संभव है, एक चित्त से दूसरे चित्त का
  ज्ञान 19
- सकारात्मक रखें मन 21
- जीवन को उमंगित रखने का अवसर हैं पर्व 22
- स्वस्थ जीवन के शाश्वत सूत्र 24
- कहानियों की दुनिया से दूर होते बच्चे 26
- शयन को एक कला बनाएँ 28
- साहस के धनी ही पाते हैं सफलता 30
- जरूरी है, जल संकट की समस्या का समाधान 31
- वैराग्य के अभ्यास से सधता है मन 33
- मनोभूमि बदले तो जीवन भी सँवरे 35
- **चेतना की शिखर यात्रा—188**
  कुंभ पर्व का रहस्य 36
- तनावमुक्ति के सूत्र 39
- **ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार—109**
  मदिरापान पर यौगिक प्रक्रियाओं के प्रभाव 41
- आयुर्वेदिक गुणों से युक्त दूध 43
- गलतियों से सीखें और भूलें सुधारें 44
- दिव्य प्रेरणा के स्रोत सप्तर्षि 46
- **युगगीता—216**
  ज्ञान के अवतरण से मिलती है शांति 47
- आत्मविश्वास से करें भय को परास्त 51
- सीय राममय सब जग जानी 52
- तुलना न करें, लक्ष्योन्मुख जीवन जिएँ 54
- **परमपूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी—4**
  जीवन के देवता को आओ तनिक सँवारें
  (गतांक से आगे) 55
- **विश्वविद्यालय परिसर से—155**
  हर क्षेत्र में शिखरों को छूता विश्वविद्यालय 60
- प्रवेश सूचना—देव संस्कृति विश्वविद्यालय 62
- **अपनों से अपनी बात**
  युग निर्माण हेतु सप्तसूत्री योजना 63
- युग प्रज्ञा का आह्वान (कविता) 66

आवरण पृष्ठ परिचय

प्रखर प्रज्ञा रूप में देदीप्यमान हमारी गुरुसत्ता

मई–जून, 2018 के पर्व–त्योहार

बुधवार	02 मई	नारद जयंती	रविवार	10 जून	कमला एकादशी
शुक्रवार	11 मई	अपरा एकादशी	शनिवार	16 जून	महाराणा प्रताप जयंती
मंगलवार	15 मई	वट सावित्री व्रत	मंगलवार	19 जून	सूर्य षष्ठी
गुरुवार	17 मई	रमजान	शुक्रवार	22 जून	गायत्री जयंती/परमपूज्य गुरुदेव महाप्रयाण दिवस
रविवार	20 मई	सूर्य षष्ठी	शनिवार	23 जून	निर्जला एकादशी
शुक्रवार	25 मई	पद्मिनी एकादशी	गुरुवार	28 जून	कबीर जयंती
मंगलवार	29 मई	पूर्णिमा व्रत			

★ **यह पत्रिका आप स्वयं पढ़ें तथा औरों को पढ़ाएँ। कुछ समय के बाद किसी अन्य पात्र को दे दें, ताकि ज्ञान का आलोक जन-जन तक फैलता रहे। —*संपादक***

▶शक्ति संरक्षण वर्ष◀

विशिष्ट सामयिक चिंतन

भारतीय आर्ष साहित्य का अनुपम विस्तार

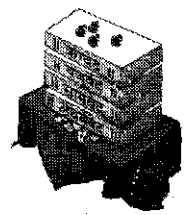

भारतीय आर्ष वाङ्मय का विस्तार अद्भुत व अतुलनीय कहा जा सकता है। किसी संस्कृति ने विश्व को क्या उपहार दिए हैं, वैश्विक विकास में उसका क्या योगदान रहा है—इसका अनुमान कालांतर में उस संस्कृति के विभिन्न चिंतकों, दार्शनिकों व मूर्द्धन्य विद्वानों द्वारा विभिन्न समयों पर किए गए चिंतनों से, दर्शनों से, दृष्टिकोणों से लगाया जा सकता है। समय गुजर जाने के बाद ये चिंतन—ग्रंथों, सूत्रों व शास्त्रों के रूप में अपनी छाप आने वाली पीढ़ियों के मनोमस्तिष्क पर छोड़कर जाते हैं। भारत की इस पवित्र भूमि का यह अनुपम सौभाग्य रहा है कि यहाँ की संस्कृति ने विश्व साहित्य को ऐसे अद्वितीय ग्रंथ समय-समय पर दिए हैं, जिनका ज्ञान, जिनसे निस्सृत चिंतन आज भी अनेकों के लिए अँधेरी राहों में एक जलते दीपक की तरह कार्य करता है।

सामान्य रूप से लोग ये ही सोचते हैं कि भारतीय आर्ष साहित्य की परंपरा मात्र वेदों में उपलब्ध ज्ञान तक सीमित है। वस्तुत: भारतीय आर्ष साहित्य, संस्कृत साहित्य को दो मूल धाराओं में विभक्त किया जा सकता है। वह साहित्य, जिसकी उत्पत्ति स्वयं देवशक्तियों अथवा भगवान के मुख से हुई, उसे आगम साहित्य कहने की परंपरा रही है। भगवान शिव के मुख से निकले तंत्रशास्त्र इसी श्रेणी में आते हैं एवं विज्ञान भैरव तंत्र से लेकर स्वच्छंदतंत्र एवं श्रीनेत्र तंत्र इसी परंपरा का साहित्य कहे जाते हैं। दूसरी धारा, निगम साहित्य की अथवा वेदों व श्रुतियों की है। वेद, जैसा सबको विदित ही है—संख्या में चार हैं, जिनके नाम क्रमश: ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद हैं।

ऋग्वेद इनमें से सर्वाधिक प्राचीन है एवं सबसे महत्त्वपूर्ण माना जाता है। ऋग्वेद संहिता की कुल 21 शाखाएँ बताई गई हैं, परंतु दुर्भाग्यवश आज के समय में मात्र 5 ही सुरक्षित रह गई हैं, जिनके नाम क्रमश: शाकल, वाष्कल, शांखायन, आश्वलायन एवं मांडूकायन हैं। ऋग्वेद के ही ब्राह्मण अथवा आरण्यक ग्रंथों में ऐतरेय ब्राह्मण अथवा आरण्यक एवं शांखायन या कौषीतकि ब्राह्मण अथवा आरण्यक ग्रंथ सम्मिलित हैं। ऋग्वेद के उपनिषदों में ऐतरेयोपनिषद्, कौषीतकि उपनिषद् एवं वाष्कलोपनिषद् हैं तो इसके शिक्षाग्रंथ क्रमश: पाणिनीय शिक्षा एवं ऋक्प्रातिशाख्य शिक्षा के नाम से जाने जाते हैं।

ऋग्वेद में मुख्य रूप से अग्नि देव का पूजन है, इसके मुख्य ऋषि पैल हैं। इसके अंतर्गत दस मंडल, आठ अष्टक, सोलह अध्याय एवं 105801 मंत्र आते हैं। ऋग्वेद में बताए गए कल्पसूत्रों को चार भागों में विभक्त किया गया है, जिनमें श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र व शुल्वसूत्र शामिल हैं। श्रौतसूत्रों में आश्वलायन व शांखायन श्रौतसूत्र आते हैं तो गृह्यसूत्रों में आश्वलायन गृह्यसूत्र व शांखायन गृह्यसूत्र आते हैं। धर्मसूत्रों में वसिष्ठ धर्मसूत्र हैं तो शुल्वसूत्र आज की तिथि में उपलब्ध नहीं हैं। ऋग्वेद का उपवेद, अर्थवेद के नाम से जाना जाता है।

वेदों में दूसरा स्थान यजुर्वेद का है, जिसकी कुल शाखाएँ 101 बताई गई हैं, पर वर्तमान में उनमें से मात्र 6 शाखाएँ ही उपलब्ध हैं। शुक्लयजुर्वेद के अंतर्गत माध्यंदिन अथवा वाजसनेयि शाखा एवं काण्व शाखा आती हैं तो कृष्णयजुर्वेद के अंतर्गत तैत्तिरीय, मैत्रायणी, कठ एवं कपिष्ठल शाखा आती हैं। यजुर्वेद के मुख्य देवता वायु हैं व प्रमुख ऋषि वैशंपायन हैं। इसके कुल मंत्रों की संख्या 4061 बताई गई है। यजुर्वेद के ब्राह्मण ग्रंथों में शुक्लयजुर्वेद के अंतर्गत, शतपथ ब्राह्मण जिसमें काण्व व माध्यंदिन, दोनों शाखाएँ सम्मिलित हैं एवं कृष्णयजुर्वेद के अंतर्गत, तैत्तिरीय, मैत्रायणी, कठ व कपिष्ठल ब्राह्मण आते हैं। यजुर्वेद के आरण्यक ग्रंथों में शुक्लयजुर्वेद के अंतर्गत बृहदारण्यक, जिसमें काण्व व माध्यंदिन आरण्यक हैं व कृष्णयजुर्वेद में तैत्तिरीय व मैत्रायणी आरण्यक बताए गए हैं।

यजुर्वेद के अंतर्गत आने वाले उपनिषद् अपने आप में गंभीर माहात्म्य के हैं। शुक्लयजुर्वेद में ईशावास्योपनिषद् व बृहदारण्यकोपनिषद् हैं तो कृष्णयजुर्वेद के अंतर्गत कठोपनिषद्, मैत्रायण्युपनिषद्, तैत्तिरीयोपनिषद् व श्वेताश्वतरोपनिषद् आते हैं। यजुर्वेद के शिक्षाग्रंथों में

शुक्लयजुर्वेद के अंतर्गत कात्यायन एवं वाजसनेयि प्रतिशाख्य शिक्षाग्रंथ हैं तो वहीं कृष्णयजुर्वेद के अंतर्गत याज्ञवल्क्य, तैत्तिरीय प्रतिशाख्य, मांडव्य, भारद्वाज व अषसाननिर्णय शिक्षाग्रंथ आते हैं।

शुक्लयजुर्वेद के श्रौतसूत्रों में कात्यायन या पारस्कर श्रौतसूत्र हैं तो वहीं कृष्णयजुर्वेद में बौधायन, आपस्तंब, सत्याषाढ, वैखानस, भारद्वाज, कठ, वाधूल, वराह, मैत्री व मानव श्रौतसूत्र सम्मिलित किए जाते हैं। शुक्लयजुर्वेदीय गृह्यसूत्रों की शृंखला में कातीय या कात्यायन या परिष्कर गृह्यसूत्र हैं तो कृष्णयजुर्वेदीय गृह्यसूत्रों की शृंखला में बौधायन, आपस्तंब, वैखानस, भारद्वाज, कठ एवं वाधूल गृह्यसूत्र आते हैं। शुक्लयजुर्वेदीय धर्मसूत्रों में हारीत व शंख, दो मुख्य भाग हैं एवं कृष्णयजुर्वेदीय धर्मसूत्रों में विष्णु, वसिष्ठ, आपस्तंब, बौधायन, हिरण्यकेशी व वैखानस सम्मिलित हैं। यजुर्वेद का उपवेद धनुर्वेद है।

तीसरा वेद सामवेद है, जिसकी कुल शाखाएँ 1000 बताई गई हैं, यद्यपि उनमें से उपलब्ध मात्र 3 ही रह गई हैं, जिनके नाम क्रमशः कौथुमीय, राणायनीय एवं जैमिनीय शाखा हैं। सामवेद के ब्राह्मणग्रंथ प्रौढ़, षड्विंश, सामविधान, आर्षेय, देवताध्याय, छांदोग्य, संहितोपनिषद्, वंश एवं जैमिनीय या तवल्कार हैं। सामवेद में दो आरण्यक ग्रंथ सम्मिलित किए गए हैं, यथा—जैमिनीय व छांदोग्यारण्यक। इसी प्रकार सामवेद के उपनिषद्—केनोपनिषद् व छांदोग्योपनिषद् हैं तो इसके शिक्षाग्रंथों में नारदीयशिक्षा, ऋक्तंत्र व पुष्पसूत्र का नाम आता है।

सामवेद के मुख्य देव सूर्य हैं तो प्रमुख ऋषि जैमिनि हैं। सामवेद में कुल 2525 मंत्र हैं। इसके श्रौतसूत्रों में लाट्यायन, द्राह्यायण, मशकसूत्र, खादिर व जैमिनीय सूत्र हैं तो इसके गृह्यसूत्रों में खादिर, गोभिल, गौतम व जैमिनीय गृह्यसूत्र गिने जाते हैं। गौतम के रूप में इसका एक ही धर्मसूत्र है तो इसके शुल्वसूत्र, वर्तमान में उपलब्ध नहीं हैं। सामवेद का उपवेद, गंधर्ववेद है।

अथर्ववेद अंतिम वेद के रूप में जाना जाता है, जिसकी कुल 9 शाखाएँ बताई गई हैं, जिनमें से मात्र 2 ही वर्तमान में उपलब्ध हैं। इनके नाम पैप्पलादशाखा एवं शौनक शाखा हैं। अथर्ववेद का ब्राह्मण ग्रंथ—गोपथ ब्राह्मण के नाम से जाना जाता है और इसके उपनिषदों के नाम क्रमशः प्रश्नोपनिषद्, मुंडकोपनिषद् व मांडूक्योपनिषद् हैं। अथर्ववेद के शिक्षा ग्रंथ—मांडूकी शिक्षा, शौनकीय शिक्षा व अथर्ववेद प्रतिशाख्य शिक्षा ग्रंथ कहलाते हैं। इसके श्रौतसूत्र वैतान व गृह्यसूत्र कौशिक हैं; जबकि इसके आरण्यक ग्रंथ, धर्मसूत्र व शुल्वसूत्र आज की तिथि में उपलब्ध नहीं हैं। अथर्ववेद के मुख्य देव सोम हैं, प्रमुख ऋषि सुमंतु हैं एवं इसके अंदर कुल 6000 के करीब मंत्र हैं। आयुर्वेद को अथर्ववेद का उपवेद माना गया है।

वेद साहित्य के अतिरिक्त, आर्ष वाङ्मय में वेदांगों का उल्लेख है, जिनमें शिक्षा, कल्प, निरुक्त, व्याकरण, छंद व ज्योतिष आते हैं। व्याकरण भी वैदिक व लौकिक, दो श्रेणी के कहे गए हैं—जिनमें लौकिक व्याकरणों में आचार्य पाणिनि का अष्टाध्यायी, आचार्य कात्यायन का वार्तिक एवं आचार्य पतंजलि का महाभाष्य सम्मिलित हैं। वैदिक साहित्य के उपरांत संस्कृत साहित्य में लौकिक साहित्य है, जिसमें दृश्य व श्रव्य, दो खंड हैं। दृश्य लौकिक साहित्य में रूपक साहित्य के रूप में, अभिज्ञान शाकुंतलम की गणना है तो उपरूपक के रूप में कर्पूरमंजरी को गिना जाता है। श्रव्य साहित्य में गद्य ग्रंथों के रूप में कादंबरी, पद्य में रामायण, महाभारत, चंपू इत्यादि सम्मिलित हैं।

इसके उपरांत संस्कृत साहित्य में स्मृतियों का स्थान है, जिसमें कुल स्मृतियाँ 20 के करीब हैं, जिनमें मनुस्मृति, याज्ञवल्क्यस्मृति व पाराशरस्मृति का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। इसके बाद पुराणों का स्थान मिलता है, जिनमें 18 महापुराण व उतने ही उपपुराण सम्मिलित हैं। महापुराणों में विष्णुपुराण, ब्रह्मपुराण व शिवपुराण आदि आते हैं तो उपपुराणों में सनत्कुमार, कपिल व सांब रचित पुराणों को सम्मिलित किया गया है। इसके साथ ही संस्कृत साहित्य में भारतीय दर्शन परंपराएँ हैं, जिनमें आगम/तंत्र दर्शन के रूप में शैव व शाक्त दर्शन, अवैदिक अथवा नास्तिक दर्शनों के रूप में चार्वाक, बौद्ध व जैन दर्शन तथा निगमिक, वैदिक व आस्तिक दर्शनों के रूप में न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा व वेदांत सम्मिलित हैं। वेदांत दर्शन में भी अद्वैत वेदांत आचार्य शंकर का, विशिष्टाद्वैत वेदांत आचार्य रामानुज का, शुद्धाद्वैत वेदांत आचार्य वल्लभ का, द्वैत वेदांत आचार्य मध्व का व द्वैताद्वैत वेदांत आचार्य निंबार्क द्वारा रचित बताए गए हैं।

मात्र संक्षेप में एवं रूपरेखा का वर्णन करने मात्र से ही संस्कृत साहित्य का फैलाव अप्रतिम ज्ञात होता है। इतने बड़े, विशाल व अद्भुत साहित्य का विस्तार जहाँ अत्यंत प्रभावित करता है, वहीं इसके साथ एक

बड़े गर्व व गौरव का विषय यह भी है कि इतने बड़े साहित्य में से मात्र लौकिक साहित्य को छोड़कर अन्य सारे साहित्य का एकाकी रूप से अनूदन करने का प्रयास, यदि किसी एक व्यक्तित्व ने किया है तो वे मात्र परमपूज्य गुरुदेव ही हैं। यों कहने की दृष्टि से ऐसा माना जाता है कि इतिहास में संपूर्ण आर्ष साहित्य का अनूदन करने का प्रयास तीन अन्य बार भी किया गया है, परंतु वर्तमान में उनमें से किसी का भी साहित्य संकलन उपलब्ध नहीं है। मात्र परमपूज्य गुरुदेव द्वारा रचित आर्ष साहित्य ही आज मानवता की एकमात्र धरोहर कहा जा सकता है। उनके इस भागीरथी प्रयास की तुलना किसी भी अन्य ऐतिहासिक कृत्य से कर पाना संभव नहीं है। आइए आगामी गायत्री जयंती पर हम यह प्रण लें कि हम उनके द्वारा रचित आर्ष साहित्य के कम-से-कम वैदिक साहित्य का अध्ययन संपूर्ण रूप से करेंगे। ❑

बलाधि ऋषि के नवजात पुत्र की मृत्यु हो गई। इस घटना से वे अत्यंत विचलित हो उठे। उन्होंने देवराज इंद्र की उपासना कर उनसे एक अमर पुत्र प्राप्त करने का निश्चय किया। इस संकल्प के साथ उन्होंने अपनी तपस्या आरंभ की और तप-शक्ति से देवराज को प्रसन्न कर लिया। इंद्रदेव प्रकट हुए और उन्होंने ऋषि बलाधि को वर माँगने का कहा। बलाधि बोले—"देव! मुझे एक ऐसा पुत्र दें, जिसकी कभी मृत्यु न हो।" देवराज इंद्र ने कहा—"ऋषिवर! मनुष्य देह का अमर हो पाना संभव नहीं है, कोई अन्य वर माँगिए।" कुछ सोचकर ऋषि ने कहा—"तो फिर मुझे ऐसा पुत्र दीजिए, जो तब तक जीवित रहे, जब तक यह सामने खड़ा पर्वत अचल खड़ा है।" इंद्र ने ऋषि को 'तथास्तु' कहा और चले गए।

कालांतर में ऋषि को पुत्र की प्राप्ति हुई, उसका नाम मेधावी रखा गया। मेधावी को बाल्यावस्था से यह अहंकार हो गया कि उसे कोई मार नहीं सकता। फलस्वरूप उसका व्यवहार अत्यंत उद्दंड हो गया। उसके व्यवहार से अनेक लोग त्रस्त होकर बलाधि ऋषि के पास पहुँचे। ऋषि ने प्रेम से पुत्र को समझाया—"पुत्र! अहंकार ही मनुष्य के पतन और सर्वनाश का कारण है। हमें कभी देवकृपा का अहंकार नहीं करना चाहिए।" मेधावी को पिता का समझाना श्रेष्ठ न लगा और वह उन्हें अपशब्द कहकर वहाँ से निकल पड़ा। मार्ग में उसकी भेंट ऋषि धनुषाक्ष से हुई। जब उसने उनके साथ भी उद्दंडता बरती तो ऋषि धनुषाक्ष ने उसे तत्काल मृत्यु का शाप दिया। मेधावी को मिले वर के कारण वह जीवित ही खड़ा रहा। ऋषि को बड़ा आश्चर्य हुआ कि उनका वचन व्यर्थ कैसे गया? उन्होंने ध्यान लगाकर सत्य का पता लगाया और मेधावी को मिले वरदान का बोध होते ही उन्होंने हाथी का रूप धारण कर अपने प्रहारों से पहाड़ को ध्वस्त कर डाला। पहाड़ गिरते ही मेधावी की मृत्यु हो गई। ऋषि बलाधि यह समाचार मिलने पर बोले—"अमर पुत्र प्राप्त करने की अपेक्षा सदाचारी पुत्र होता, तो मुझे ज्यादा संतोष मिला होता।"

शक्ति जागरण के त्रिविध उपाय

'मन के हारे हार है, मन के जीते जीत'। मनुष्य में शक्ति का उदय या सामर्थ्य का अवतरण बाहर से नहीं होता, बल्कि भीतर से होता है। यदि मनुष्य स्वयं ही हार मानकर बैठ जाए व स्वयं को अशक्त, निर्बल एवं सामर्थ्यविहीन मानने लगे तो उसके लिए प्रगति के द्वार स्वतः ही अवरुद्ध हो जाते हैं। शक्ति के जागरण के लिए पहले मन में इस विश्वास को उत्पन्न करना जरूरी है कि प्रयत्न करने से हम भी शक्तिशाली बन सकते हैं। कई बार वर्तमान की विपन्नता को देखकर मनुष्य ऐसा सोचने लगता है कि हमारा शेष जीवन भी इसी विपन्नता में गुजरने वाला है। यह एक भ्रांति के सिवाय कुछ नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति के भीतर शक्ति के जागरण का केंद्र विद्यमान है, जिसको जगाने से सांसारिक व आध्यात्मिक, दोनों जगत के शीर्ष को छू पाना संभव है। जिस क्षण इस शक्ति का जागरण हो जाता है, उसी क्षण से मनुष्य अपने जीवन की दिशा को बदला हुआ पाता है।

शास्त्रकार ने लिखा है—**प्रत्येकमस्ति चिच्छक्तिर्जीव शक्तिस्वरूपिणी**॥ अर्थात प्रत्येक जीवात्मा में शक्ति-जागरण की संभावना विद्यमान है। भारतीय सामाजिक अवधारणा भी इसी शक्ति-जागरण की व्यवस्था पर विश्वास करती रही है। शक्तिसंचय से व्यक्ति 'धर्म' को उपलब्ध होता है, धर्म-धारण करने वाला व्यक्ति ही कल्याणकारी 'अर्थ' का अर्जन कर सकता है। इन दोनों पर अधिकार रखने वाला—पुण्यप्रदायी काम या कामनाओं का स्वामी बनता है और अंततः यही शक्ति उसे 'मोक्ष' के द्वार पर ले जाकर खड़ा करती है। दूसरे शब्दों में कहें तो शक्ति के प्रवाह को लोक-मंगल के कार्यों में लगाने वाले ही समग्र उन्नति के अधिकारी बन पाते हैं।

आध्यात्मिक दृष्टि से मानवीय शरीर—तीन तलों पर कार्य करता देखा जाता है। अध्यात्मवेत्ताओं द्वारा इन्हें स्थूल, सूक्ष्म व कारण शरीरों के नाम दिए गए हैं। जहाँ स्थूलशरीर को शक्तिशाली बनाने के लिए योग, आसन, व्यायाम, प्राणायाम जैसे बाह्य उपक्रमों की आवश्यकता होती है तो वहीं सूक्ष्मशरीर को मंत्र, जप, ध्यान, योग शक्तिशाली बनाते हैं। कारणशरीर—समाधि, कैवल्य, निर्वाण की अवस्था में परम शक्ति को प्राप्त करता है। स्थूलशरीर को शक्ति का अर्जन करने के लिए भौतिक तत्त्वों व पदार्थों की आवश्यकता होती है तो वहीं सूक्ष्म व कारणशरीरों के लिए शक्ति के स्रोत—प्राणमय, मनोमय व विज्ञानमय कोशों के माध्यम से खुलते हैं। कहने का तात्पर्य इतना भर है कि क्षेत्र चाहे भौतिक हो या आध्यात्मिक, प्रत्येक जगत के अपने-अपने शक्ति के स्रोत, केंद्र व आयाम हैं—जिनके जागरण से उस क्षेत्र या केंद्र विशेष को शक्तिशाली बना पाना सहजता से संभव हो पाता है।

इन सब संभावनाओं को साकार करने के लिए मनुष्य को सभी क्षेत्रों में उचित पुरुषार्थ करने की आवश्यकता होती है। शारीरिक रूप से संयम, मानसिक रूप से आत्मविश्वास व सामाजिक रूप से पुरुषार्थ करने पर ही इन शक्तियों का जागरण संभव हो पाता है। बिना संयम-साधना के शारीरिक एवं मानसिक, दोनों ही तरह की शक्तियों का जागरण संभव नहीं हो सकता है। संयम की साधना जीवन को अनुशासित करने से संभव हो पाती है। मनुष्य शक्ति के अर्जन के लिए तो प्रयास करता दीखता है, पर उसके उचित संरक्षण की व्यवस्था न बन पाने के कारण उस सारी शक्ति का अपव्यय हो जाता है और फिर जीवन निष्क्रियता व जड़ता में बदल जाता है।

संयम का अर्थ जीवन को अनुशासित करने से लगाना चाहिए। इस संदर्भ में एक प्रसिद्ध बोधकथा है। एक स्थान पर एक सिद्ध संत का निवास था। एक बार उनके शिष्य उनके पास अपनी एक जिज्ञासा को लेकर पहुँचे। उन्होंने पूछा—"गुरुवर! मनुष्य के भीतर उत्थान एवं पतन, दोनों ही तरह की संभावनाएँ विद्यमान हैं। सिद्ध संतों से लेकर महापुरुषों तक, अनेकों जाग्रत आत्माएँ मनुष्य रूप में धरती पर आती हैं, परंतु ऐसे भी अनेक मनुष्य दिखाई पड़ते हैं, जिनका जीवन पाशविक प्रवृत्तियों की पूर्ति के अतिरिक्त किसी अन्य उद्देश्य के लिए नियोजित नहीं दिखाई पड़ता। क्या कारण है कि जो मनुष्य अपने जीवन को महानता के

शिखर पर ले जा सकता है, वह उसी जीवन को व्यर्थ गँवाता हुआ भी नजर आता है।''

संत ने उनके प्रश्न का उत्तर तो नहीं दिया, परंतु उन्हें दो ऐसे पात्र लाने को कहा, जिनमें से एक का तल न हो। शिष्य दो ऐसे पात्र लेकर आए। संत ने शिष्यों से कहा कि अब वे इन दोनों पात्रों को जल से भरकर दिखाएँ। शिष्यों ने प्रयत्न किया। जिस पात्र में तल था, उसमें तो पानी रुकता था, पर तलविहीन पात्र लाख प्रयत्न करने के बाद भी रिक्त ही रहता था। अब संत शिष्यों को उत्तर देते हुए बोले—''वत्स! मनुष्य के जीवन में पतन का कारण यही है। यदि मनुष्य जीवन को संयमित न करे, उसके व्यक्तित्व में ऊर्जा के विसर्जन हेतु छिद्र मौजूद न हों तो फिर शक्ति का संरक्षण कर वह अपने जीवन को उत्थान के मार्ग पर ले जा सकता है अन्यथा तलविहीन पात्र की तरह सारी शक्ति पतनोन्मुख प्रवृत्तियों की पूर्ति में ही व्यर्थ चली जाती है।''

यह तथ्य जीवन के सभी आयामों पर समान रूप से लागू होता है। यदि हम शक्ति को संयमित करने के उपायों पर चिंतन नहीं करेंगे तो अर्जित शक्ति का अपव्यय होते समय नहीं लगता है। इस हेतु परमपूज्य गुरुदेव ने चार तरह के संयमों की चर्चा की है—(1) इंद्रिय संयम, (2) समय संयम, (3) विचार संयम एवं (4) अर्थ संयम। इन चारों संयमों को जीवन में आत्मसात् करने वाले सदा शक्ति का अर्जन कर उत्कर्ष के मार्ग पर अग्रसर रहते हैं।

मानसिक शक्ति के जागरण के लिए आत्मविश्वास को जगाने की आवश्यकता होती है। जो किसी कार्य को प्रारंभ करने से पहले ही अपने मन में हार मान करके बैठ जाते हैं, उनकी जीवन-संग्राम में पराजय निश्चित मानी जा सकती है। उदाहरण के तौर पर अमेरिका के प्रसिद्ध राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन, राष्ट्रपति बनने से पूर्व तेरह बार चुनाव में पराजित हुए थे। चार बार तो उन्हें अपनी जमानत तक गँवानी पड़ी थी। यदि इन असफलताओं से हार मानकर वे बैठ जाते तो कभी इतने प्रख्यात व्यक्तित्व नहीं बन पाते। मानसिक शक्ति के जागरण के लिए आत्मविश्वास को जगाने की आवश्यकता होती है।

सामाजिक शक्ति के जागरण के लिए मनुष्य को पुरुषार्थ करने की आवश्यकता होती है। पुरुषार्थ—निरंतरता, दीर्घकालिकता व कार्य के प्रति पूर्णनिष्ठा व समर्पण से परिभाषित होता है। कई लोग किसी कार्य को आरंभ तो करते हैं, परंतु उसको निरंतर कर पाने से वंचित रहते हैं। एक दिन कार्य करके अगले दिन चमत्कार की उम्मीद करने वालों को जीवन में असफलता ही स्वीकार करनी पड़ती है। यदि सामाजिक शक्ति का अभ्युदय करना हो तो उसके लिए निरंतर निष्ठा के साथ कार्य को करने की आवश्यकता होती है। शक्ति संरक्षण वर्ष में हमें जीवन के इन सभी आयामों में शक्ति के जागरण, संचय, संवर्द्धन एवं अभिवर्द्धन के लिए इन्हीं तरीकों से प्रयत्न करने की आवश्यकता है। ❑

एक मंदिर में एक पुजारी रहते थे। निकट ही एक नर्तकी भी रहा करती थी। पुजारी हर समय नर्तकी की बुराई करते रहते थे कि वह नरक जाएगी। उधर नर्तकी मजबूरी में वह कार्य करती थी और सदा परमात्मा से अपने कर्मों के लिए क्षमा माँगती हुई प्रार्थनारत रहती थी। संयोगवश दोनों की मृत्यु एक ही दिन हुई। चित्रगुप्त के पास कर्मों की गणना होने पर पता चला कि मन-ही-मन बुरा भाव रखने के कारण पुजारी के पाप बढ़ गए हैं; जबकि मन-ही-मन प्रायश्चित वृत्ति रखने के कारण नर्तकी उत्तम फल की अधिकारी बन गई। वस्तुतः कर्मों का फल मनोभाव के अनुसार मिलता है। बाहर के कर्म से ज्यादा महत्त्वपूर्ण यह हो जाता है कि कर्म करते समय हमारे मनोभाव कैसे हैं, इसलिए सदा पवित्र मनोभाव रखते हुए कर्म करना चाहिए।

लोकहित के लिए जिएँ जीवन

हमारे हिंदू शास्त्रों में चार आश्रमों का विधान है—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास। हिंदू शास्त्रों के अनुसार—मानवजाति के साधारण कर्त्तव्यों के अतिरिक्त प्रत्येक मनुष्य के जीवन में कुछ विशेष कर्त्तव्य होते हैं। एक हिंदू व्यक्ति को पहले ब्रह्मचर्याश्रम अर्थात छात्र जीवन का अवलंबन करना पड़ता है, इसके बाद वह विवाह करके गृहस्थ हो जाता है, वृद्धावस्था में गृहस्थाश्रम से अवकाश लेकर वह वानप्रस्थ धर्म का अवलंबन करता है और अंत में वह संसार को त्यागकर संन्यासी हो जाता है।

जीवन के इन भिन्न-भिन्न आश्रमों में हमारे भिन्न-भिन्न कर्त्तव्य होते हैं और वास्तव में इन आश्रमों में कोई किसी से श्रेष्ठ नहीं है। अध्यापन करने वाला विद्वान हो, परिश्रम करने वाला मजदूर हो या कि एक सिंहासनारूढ़ राजा—सभी अपनी-अपनी दृष्टि से श्रेष्ठ कहे जा सकते हैं। स्वामी विवेकानंद का कहना था कि एक गृहस्थ का जीवन भी उतना ही श्रेष्ठ है, जितना कि एक ब्रह्मचारी व्यक्ति का, जिसने अपना जीवन धर्मकार्य के लिए उत्सर्ग कर दिया है और इस बारे में यह कहना भी व्यर्थ है कि 'गृहस्थ से संन्यासी श्रेष्ठ है' क्योंकि संसार को छोड़कर स्वच्छंद और शांत जीवन में रहकर ईश्वरोपासना करने की अपेक्षा संसार में रहते हुए ईश्वर की उपासना करना बहुत कठिन है और वर्तमान में तो भारत में जीवन के ये चार आश्रम घटकर केवल दो ही रह गए हैं—गृहस्थ एवं संन्यास। इन दोनों में कौन श्रेष्ठ है? इस संबंध में एक कहानी है।

एक राजा था। उसके राज्य में जब भी कोई संन्यासी आते, तो उनसे वह सदैव एक ही प्रश्न करता था—"संसार को त्यागकर जो संन्यास ग्रहण करता है, वह श्रेष्ठ है या संसार में रहकर जो गृहस्थ धर्म के समस्त कर्त्तव्यों का पालन करता है, वह श्रेष्ठ है?" अनेक विद्वान लोगों ने उसके इस प्रश्न का उत्तर देने का प्रयत्न किया। कुछ लोगों ने कहा कि संन्यासी श्रेष्ठ है। यह सुनकर राजा ने उन्हें यह सिद्ध करने को कहा।

जब वे ऐसा सिद्ध न कर सके, तो राजा ने उन्हें विवाह करके गृहस्थ हो जाने की आज्ञा दी। कुछ और लोग आए और उन्होंने कहा—"स्वधर्मपरायण गृहस्थ ही श्रेष्ठ है।" राजा ने उनसे भी उनकी बात के लिए प्रमाण माँगा, पर जब वे अपनी बात का कोई प्रमाण न दे सके, तो राजा ने उन्हें गृहस्थ धर्म त्यागकर संन्यासी हो जाने की आज्ञा दी।

अंत में राजा के पास एक युवा संन्यासी आए। राजा ने उनसे भी उसी प्रकार का प्रश्न किया। संन्यासी ने कहा—"हे राजन्! अपने-अपने स्थान पर दोनों ही श्रेष्ठ हैं, कोई किसी से कम नहीं है।" राजा ने इस बात का प्रमाण माँगा। संन्यासी ने उत्तर दिया—"हाँ, मैं इसे सिद्ध कर दूँगा, परंतु आपको मेरे साथ आना होगा और कुछ दिन मेरे ही समान जीवन व्यतीत करना होगा। तभी मैं आपको अपनी बात का प्रमाण दे सकूँगा।" राजा ने संन्यासी की बात मान ली और उनके साथ चल दिया। राजा उन संन्यासी के साथ अपने राज्य की सीमा को पार कर अनेक देशों में से होता हुआ एक बड़े राज्य में जा पहुँचा।

उस राज्य की राजधानी में एक बड़ा उत्सव मनाया जा रहा था। राजा और संन्यासी ने संगीत और नगाड़ों के शब्द सुने तथा ढोल पीटने वालों की आवाज भी। लोग सड़कों पर कतारों में खड़े थे। उसी समय एक विशेष घोषणा वहाँ की जा रही थी। राजा और संन्यासी भी यह सब देखने के लिए वहाँ खड़े हो गए। घोषणा करने वाले ने चिल्ला-चिल्लाकर कहा—"इस देश की राजकुमारी का स्वयंवर होने वाला है।" राजकुमारियों का अपने लिए इस प्रकार पति चुनना भारतवर्ष में एक पुराना रिवाज था। अपने भावी पति के लिए प्रत्येक राजकुमारी के अलग-अलग विचार होते थे। कोई अत्यंत रूपवान पति चाहती थी, तो कोई अत्यंत विद्वान, कोई अत्यंत धनवान आदि।

स्वयंवर में भाग लेने के लिए अड़ोस-पड़ोस के राज्यों के राजकुमार श्रेष्ठ-से-श्रेष्ठ ढंग से स्वयं को प्रस्तुत

कर राजकुमारी के सम्मुख उपस्थित होते थे। कभी-कभी उन राजकुमारों के भी दूत होते थे, जो उनके गुणों का गान करते तथा यह दरसाते थे कि उन्हीं का वरण किया जाए। राजकुमारी को एक सजे हुए सिंहासन पर बिठाकर आलीशान ढंग से सभा के चारों ओर ले जाया जाता था। वह उन सब के सामने जाती तथा उनका गुणगान सुनती। यदि उसे कोई राजकुमार नापसंद होता, तो वह अपने वाहकों से कहती—"आगे बढ़ो।" यदि राजकुमारी किसी राजकुमार से प्रसन्न हो जाती, तो वह उसके गले में वरमाला डाल देती और वह राजकुमार उसका पति हो जाता था।

जिस देश में वह राजा और संन्यासी आए हुए थे, उस देश में इसी प्रकार का स्वयंवर हो रहा था। यह राजकुमारी संसार की अद्वितीय सुंदरी थी और उसका भावी पति ही उसके पिता के बाद उसके राज्य का उत्तराधिकारी होने वाला था। इस राजकुमारी का विचार एक अत्यंत आकर्षक पुरुष से विवाह करने का था, परंतु उसे योग्य व्यक्ति मिलता ही न था। कई बार उसके लिए स्वयंवर रचे गए, पर राजकुमारी को अपने मन का पति न मिला। इस बार का स्वयंवर बड़ा सुंदर था, अन्य सभी अवसरों की अपेक्षा इस बार अधिक लोग आए हुए थे।

स्वयंवर की प्रक्रिया में राजकुमारी रत्नजटित सिंहासन पर बैठकर आई और उसके वाहक उसे एक राजकुमार के सामने से दूसरे के सामने ले गए, परंतु उसने किसी की ओर गौर से देखा तक नहीं। सभी लोग निराश हो गए और सोचने लगे कि क्या अन्य अवसरों की भाँति इस बार का स्वयंवर भी असफल ही रहेगा। इतने में वहाँ पर एक दूसरा तरुण संन्यासी आ पहुँचा और सभा में एक ओर खड़ा होकर यह सब देखने लगा। वह इतना सुंदर था कि मानो सूर्यदेव ही आकाश छोड़कर स्वयं धरती पर उतर आए हों। राजकुमारी का सिंहासन जैसे ही उसके समीप आया और ज्यों ही राजकुमारी ने उस सुंदर संन्यासी को देखा, त्यों ही वह रुक गई और उसके गले में वरमाला डाल दी, लेकिन तरुण संन्यासी ने वह माला फेंक दी और कहा—"मैं संन्यासी हूँ, मुझे विवाह से क्या प्रयोजन?"

उस देश के राजा ने सोचा कि शायद निर्धन होने के कारण वह राजकुमारी से विवाह करने का साहस नहीं कर रहा है। अतएव राजा ने उससे कहा—"देखो, मेरी कन्या के साथ तुम्हें मेरा आधा राज्य अभी मिल जाएगा और संपूर्ण राज्य मेरी मृत्यु के बाद।" लेकिन फिर भी उस तरुण संन्यासी ने विवाह करने से मना कर दिया और सभा छोड़कर चला गया। इधर राजकुमारी उस युवा पर इतनी मोहित हो गई थी कि उसने कह दिया कि मैं उसी युवक से विवाह करूँगी, नहीं तो प्राण त्याग दूँगी और राजकुमारी संन्यासी के पीछे-पीछे उसे लौटा लाने के लिए चल पड़ी। इस अवसर पर पहले संन्यासी जो राजा को यहाँ लाए थे, उन्होंने राजा से कहा—"राजन्! चलिए, इन दोनों के पीछे-पीछे हम लोग भी चलते हैं।"

वह तरुण संन्यासी जिसने राजकुमारी से विवाह करने से इनकार कर दिया था, कई मील पैदल निकल गया और अंत में एक जंगल में घुस गया, उसके पीछे राजकुमारी थी और उन दोनों के पीछे ये दोनों। तरुण संन्यासी उस वन से भली भाँति परिचित था तथा वहाँ के सारे जटिल रास्तों का उसे ज्ञान था। वह एकदम एक नए रास्ते में घुस गया और अदृश्य हो गया। राजकुमारी उसे फिर न देख सकी। उसे काफी देर तक ढूँढ़ने के बाद अंत में वह एक वृक्ष के नीचे बैठ गई और रोने लगी; क्योंकि उसे उस वन से बाहर निकलने का मार्ग नहीं मालूम था।

इतने में वह राजा और संन्यासी उसके पास आए और उससे कहा—"बेटी, रोओ मत, हम तुम्हें इस जंगल के बाहर निकाल ले चलेंगे, परंतु अभी बहुत अँधेरा हो गया है, जिससे रास्ता ढूँढ़ना सहज नहीं। इसलिए अभी हम सब इसी पेड़ के नीचे विश्राम करते हैं, सवेरा होते ही हम तुम्हें मार्ग बता देंगे।" उसी पेड़ की डाली पर एक चिड़ा, एक चिड़िया और उनके तीन बच्चे रहते थे।

उस चिड़े ने जब पेड़ के नीचे इन तीन लोगों को देखा तो उसने अपनी चिड़िया से कहा—"देखो, हमारे यहाँ ये लोग अतिथि रूप में आए हैं, जाड़े का मौसम है, हम लोग क्या करें? हमारे पास आग तो है नहीं।" यह कहकर वह उड़ गया और एक जलती हुई लकड़ी का टुकड़ा अपनी चोंच में दबाकर लाया और उसे अतिथियों के सामने गिरा दिया। उन तीनों ने उसमें लकड़ी लगाकर आग जलाई, परंतु चिड़े को फिर भी संतोष न हुआ। उसने चिड़िया से कहा—"बताओ, अब हमें क्या करना चाहिए? ये लोग भूखे हैं और इन्हें खिलाने के लिए हमारे पास कुछ भी नहीं है। हम लोग गृहस्थ हैं और हमारा धर्म है कि जो कोई हमारे घर आए, उसे हम भोजन कराएँ। जो कुछ मेरी शक्ति में है, मुझे अवश्य करना चाहिए,

अत: मैं उन्हें अपना यह शरीर ही दूँगा।''—ऐसा कहकर वह आग में कूद पड़ा और भुन गया। अतिथियों ने उसे आग में गिरते देखा तो बचाने का प्रयत्न किया, परंतु वह बच न सका। उसकी चिड़िया ने भी अपने मन में कहा—''ये तीन लोग हैं, उनके भोजन के लिए केवल एक ही चिड़िया पर्याप्त नहीं।'' ऐसा सोचकर वह भी आग में कूद गई और भुन गई। इसके बाद जब उनके तीन छोटे बच्चों ने यह देखा कि उन अतिथियों के लिए इतना पर्याप्त न होगा, अब हमारा भी धर्म है कि हम अपने माता-पिता के कार्य को पूरा करें और यह सोचकर वे सब भी आग में कूद पड़े।

यह सब देखकर पेड़ के नीचे बैठे तीनों लोग बहुत चकित हुए। उन चिड़ियों को वे कैसे खा सकते थे? अत: रात को वे बिना भोजन किए ही रहे। प्रात:काल राजा तथा संन्यासी ने राजकुमारी को जंगल का रास्ता दिखला दिया और वह अपने पिता के घर वापस चली गई। तब संन्यासी ने राजा से कहा—''देखो राजन्! इस पूरे घटनाप्रसंग से तुम्हें यह ज्ञात हो गया होगा कि अपने-अपने स्थान पर सब बड़े हैं। यदि तुम संसार में रहना चाहते हो, तो इन चिड़ियों के समान रहो, जो दूसरों के हित के लिए अपना जीवन दे देने के लिए सदैव तत्पर हैं और यदि तुम संसार छोड़ना चाहते हो तो उस तरुण संन्यासी के समान रहो, जिसके लिए वह परम सुंदर स्त्री और एक राज्य भी तृणवत् था। अत: यदि गृहस्थ होना चाहते हो, तो दूसरों के हित के लिए अपना जीवन अर्पित कर देने के लिए तैयार रहो और यदि तुम्हें संन्यास जीवन की इच्छा है तो सौंदर्य, धन और अधिकार की ओर आँख तक न उठाओ।'' इस प्रकार यह सोचना व्यर्थ है कि एक आश्रम का महत्त्व दूसरे से ज्यादा हो जाता है। यदि लोकहित के लिए जीवन जिया जाता है तो हर आश्रम श्रेष्ठता की ओर ही ले जाता है। ❑

****

हकीम लुकमान बचपन में गुलाम थे। वे अपने मालिक के घर रहकर काम करते, उनका दिया अन्न खाते एवं उनके दिए कपड़े पहनते। एक दिन उनके मालिक ने एक ककड़ी खरीदी। ककड़ी मुँह में डालते ही मालिक का मुँह कड़ुआ हो गया। उन्होंने मजाक में ही वह ककड़ी लुकमान को खाने के लिए दे दी। लुकमान को भी वह ककड़ी कड़ुई लगी, परंतु उन्होंने प्रसन्न भाव से उसे खा लिया। मालिक को यह देखकर आश्चर्य हुआ।

उन्होंने लुकमान से पूछा—''तुमने इतनी कड़ुई ककड़ी कैसे खा ली?'' लुकमान ने उत्तर दिया—''मालिक! आप मुझे प्रतिदिन खाने के लिए अनेक स्वादिष्ट पकवान देते हैं। उनको खाकर मैं आनंदित होता हूँ। आज जब आपने मुझे खाने के लिए कड़ुई ककड़ी दी तो मैंने सोचा कि मुझे इसे भी प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण करना चाहिए।'' लुकमान का मालिक एक धार्मिक व्यक्ति था और उस पर लुकमान की इस बात का बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। वह बोला—''लुकमान आज तुमने मुझे उपदेश दिया है कि परमात्मा हमें इतने सुख देता है। यदि वह हमें कभी दु:ख दे तो उस दु:ख को भी हमें प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करना चाहिए।'' इतना कहकर मालिक ने लुकमान को गुलामी से आजाद कर दिया। लुकमान की यह सोच हर व्यक्ति के लिए है। यदि हम जीवन के सुख एवं दु:ख, दोनों में भगवान का आशीर्वाद मानें तो जीवन कभी कष्टकारी प्रतीत नहीं होगा।

****

पर्व विशेष (वट सावित्री)

भारतीय संस्कृति के गौरवशाली अतीत का प्रतीक पर्व

ज्येष्ठ मास के कृष्ण पक्ष की अमावस्या वट सावित्री अमावस्या कहलाती है। इस दिन सौभाग्यवती महिलाएँ अखंड सौभाग्य प्राप्त करने के लिए वट सावित्री व्रत रखकर वटवृक्ष तथा यमदेव की पूजा करती हैं। भारतीय संस्कृति में यह व्रत आदर्श नारीत्व का प्रतीक एवं पर्याय बन चुका है। वट सावित्री व्रत में वट और सावित्री, दोनों का विशेष महत्त्व माना गया है।

सावित्री, राजा अश्वपति की पुत्री थी, जिसे राजा ने बहुत कठिन तपस्या करने के उपरांत देवी सावित्री की कृपा से प्राप्त किया था। इसलिए राजा ने उसका नाम 'सावित्री' रखा था। सावित्री बहुत गुणवान व रूपवान थी, लेकिन उसके अनुरूप योग्य वर न मिलने के कारण सावित्री के पिता दु:खी रहा करते थे। इसलिए उन्होंने अपनी कन्या को स्वयं अपना वर तलाशने के लिए भेज दिया और इस तलाश में एक दिन वन में सावित्री ने सत्यवान को देखा और उसके गुणों के कारण मन में ही उसे वर के रूप में वरण कर लिया। सत्यवान साल्व देश के राजा द्युमत्सेन के पुत्र थे, लेकिन उनका राज्य किसी ने छीन लिया था। अत: वे वन में कुटिया बनाकर निवास करते थे और काल के प्रभाव के कारण सत्यवान के माता-पिता अंधे हो गए थे।

सत्यवान व सावित्री के विवाह से पूर्व ही नारद मुनि ने यह सत्य सावित्री को बता दिया था कि सत्यवान अल्पायु है, अत: वह उससे विवाह न करे। यह जानते हुए भी सावित्री ने उसी से विवाह करने का निश्चय किया और देवर्षि नारद से कहा—"भारतीय नारी, जीवन में मात्र एक बार पति का वरण करती है, बारंबार नहीं। अत: मैंने एक बार ही सत्यवान का वरण किया है और यदि उसके लिए मुझे मृत्यु से भी लड़ना पड़े तो मैं यह करने को तैयार हूँ।"

उसकी मृत्यु का समय निकट आने पर मृत्यु से तीन दिन पूर्व ही सावित्री ने अन्न-जल का त्याग कर दिया। मृत्यु वाले दिन जंगल में जब सत्यवान लकड़ी काटने के लिए गया तो सावित्री भी उसके साथ गई और जब मृत्यु का समय निकट आ गया तथा सत्यवान के प्राण हरने के लिए यमराज आए तो सावित्री भी उनके साथ चलने लगी। यमराज के बहुत समझाने पर भी वह वापस लौटने को तैयार नहीं हुई। तब यमराज ने उससे सत्यवान के जीवन को छोड़कर अन्य कोई भी वर माँगने को कहा।

उस स्थिति में सावित्री ने अपने अंधे सास-ससुर की नेत्र ज्योति और ससुर का खोया हुआ राज्य माँग लिया, किंतु वापस लौटना स्वीकार न किया। उसकी अटल पतिभक्ति से प्रसन्न होकर यमराज ने जब पुन: उससे वर माँगने को कहा तो उसने सत्यवान के पुत्रों की माँ बनने का बुद्धिमत्तापूर्ण वर माँगा। यमराज के तथास्तु कहते ही मृत्युपाश से मुक्त होकर वटवृक्ष के नीचे पड़ा हुआ सत्यवान का मृत शरीर जीवित हो उठा। तब से अखंड सौभाग्यप्राप्ति के लिए इस व्रत की परंपरा आरंभ हो गई और इस व्रत में वटवृक्ष व यमदेव की पूजा का भी विधान बन गया।

महर्षि श्रीअरविंद ने भी इस कथा को मध्य में रखते हुए सावित्री महाकाव्य की रचना की है, जिसमें उन्होंने सावित्री की कथा को आध्यात्मिक जीवन की यात्रा व उसकी अनुभूतियों के रूप में पिरोया है। उसे सावित्री-साधना का आध्यात्मिक ग्रंथ भी कह सकते हैं।

शास्त्रों के अनुसार पीपल वृक्ष के समान वट यानी बरगद का वृक्ष भी विशेष महत्त्व रखता है। पुराणों के अनुसार—वटवृक्ष के मूल में ब्रह्मा, मध्य में विष्णु व अग्रभाग में शिव का वास माना गया है। अत: ऐसा माना जाता है कि इसके नीचे बैठकर पूजन व व्रतकथा आदि सुनने से मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं। यह वृक्ष लंबे समय तक अक्षय रहता है, इसलिए इसे अक्षयवट भी कहते हैं। जैन और बौद्ध भी अक्षयवट को अत्यंत पवित्र मानते हैं। जैनों का मानना है कि उनके तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव ने अक्षयवट के नीचे बैठकर ही तपस्या की थी। प्रयाग में इस स्थान को ऋषभदेव तपस्थली या तपोवन के नाम से जाना जाता है।

वटवृक्ष कई दृष्टिकोणों से महत्त्वपूर्ण है। सबसे पहले यह वृक्ष अपनी विशालता के लिए प्रसिद्ध है। दार्शनिक दृष्टि से देखा जाए तो यह वृक्ष दीर्घायु व अमरत्व बोध का प्रतीक है, ज्ञान व निर्वाण का प्रतीक है; क्योंकि इसी वृक्ष के नीचे राजकुमार सिद्धार्थ ने बुद्धत्व को प्राप्त किया और भगवान बुद्ध कहलाए। बोध ज्ञान प्राप्त करने के कारण इस अक्षय वटवृक्ष को बोधिवृक्ष भी कहते हैं, जो गया तीर्थ में स्थित है। इसी तरह वाराणसी में भी ऐसे वटवृक्ष हैं, जिन्हें अक्षयवट मानकर पूजा जाता है।

वटवृक्ष की महिमा का वर्णन श्रीरामचरितमानस में भी गोस्वामी तुलसीदास जी ने कुछ इस प्रकार किया है—

माघ मकरगत रबि जब होई।
तीरथपतिहिं आव सब कोई॥
देव दनुज किंनर नर श्रेनीं।
सादर मज्जहिं सकल त्रिबेनीं॥
पूजहिं माधव पद जलजाता।
परसि अखय बटु हरषहिं गाता॥

—बालकांड, 43 ख/2-3

अर्थात माघ में जब सूर्य मकर राशि पर जाते हैं, तब सब लोग तीर्थराज प्रयाग को आते हैं। देवता, दैत्य, किन्नर और मनुष्यों के समूह सब आदरपूर्वक त्रिवेणी में स्नान करते हैं। श्रीवेणीमाधव जी के चरणकमलों को पूजते हैं और अक्षयवट का स्पर्श कर उनके शरीर पुलकित होते हैं। यह अक्षयवट प्रयाग में त्रिवेणी के तट पर आज भी स्थित है। वटवृक्ष को भगवान शिव का भी प्रतीक माना जाता है; क्योंकि वटवृक्ष के नीचे भगवान शिव भी प्राय: समाधि लगाते थे। रामचरितमानस के बालकांड में गोस्वामी तुलसीदास जी ने इस घटना का उल्लेख किया है—

तहँ पुनि संभु समुझि पन आपन।
बैठे बट तर करि कमलासन॥
संकर सहज सरूपु सम्हारा।
लागि समाधि अखंड अपारा॥

—बालकांड, 57ख/7-8

अक्षयवट का संदर्भ कालिदास के रघुवंश तथा चीनी यात्री ह्वेनसांग के यात्राविवरणों में भी मिलता है। कुरुक्षेत्र के निकट ज्योतिसर नामक स्थान पर भी एक वटवृक्ष है, जिसके बारे में ऐसा माना जाता है कि यह भगवान श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को दिए गए गीता के उपदेश का साक्षी है।

इस तरह वटवृक्ष की महिमा अपार है। गोस्वामी तुलसीदास जी भी श्रीरामचरितमानस में कहते हैं—**बटु बिस्वास अचल निज धरमा।**—बालकांड 1/6, अर्थात अपने धर्म के प्रति अटल विश्वास ही अक्षयवट का प्रतीक है। आयुर्वेद में भी वट यानी बरगद को अत्यंत लाभकारी माना गया है। इसके पंचांग (जड़, तना, पत्ते, फूल और फल) चिकित्सकीय उपचार में काम आते हैं। वटवृक्ष वातावरण को शीतलता व शुद्धता प्रदान करता है और आध्यात्मिक दृष्टि से भी यह अत्यंत लाभकारी है। अत: वट सावित्री व्रत के रूप में वटवृक्ष की पूजा का यह विधान भारतीय संस्कृति की गौरव-गरिमा का एक प्रतीक है और इसके द्वारा वृक्षों के औषधीय महत्त्व व उनके देवस्वरूप का भी ज्ञान होता है। ❑

डॉ0 राजेंद्रप्रसाद उन दिनों राष्ट्रपति तो नहीं बने थे, परंतु भारत के अग्रणी नेता अवश्य थे। एक बार उन्हें पंडित नेहरू से मिलने इलाहाबाद जाना था। निश्चित ट्रेन पर उन्हें लेने अनेक व्यक्ति पहुँचे, परंतु उनकी सादगी के कारण उन्हें पहचान न सके और वापस लौट गए। राजेंद्र बाबू ताँगे पर बैठकर आनंदभवन पहुँचे। रात बहुत हो चुकी थी। लोगों को जगाने की अपेक्षा उन्होंने यही उचित समझा कि दरवाजे के बाहर खुले फर्श पर सोया जाए। रात्रि के अंतिम प्रहर में जब उन्हें दमे की खाँसी उठी तो पंडित नेहरू ने उनकी आवाज पहचानी और द्वार खोलकर उन्हें घर के भीतर लेकर गए। राजेंद्र बाबू की इस सादगी एवं सज्जनता को जब लोगों ने अगले दिन जाना तो सबकी आँखें भर आईं।

रहस्यमय दीपकों की गाथाएँ

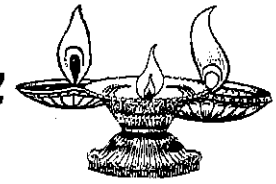

हम सभी पूजा के कर्मकांड में दीपक सबसे पहले जलाते हैं, इसमें मुख्य रूप से घी या तेल, रूई की बत्ती व अग्नि की लौ का प्रयोग होता है। तेल या घी समाप्त हो जाने पर जलते हुए दीपक बुझ जाते हैं। इसके साथ ही दीपकों को जलाए रखने में ऑक्सीजन की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। यदि ऑक्सीजन न हो, तो भी जलते हुए दीये बुझ जाते हैं। लेकिन दुनिया में ऐसे दीये भी पाए गए हैं, जो शताब्दियों से जलते आए हैं और वो भी बिना तेल और हवा के।

हमारे इतिहास में ऐसे कई दीपकों का विवरण मिलता है, जो बंद स्थानों यानी हवा व तेल के अभाव में दीर्घावधि तक जलते हुए पाए गए। जैसे—एस्टे नाग के एक प्राचीन नगर मैक्समस की एक कब्र में खुदाई करने पर न जाने कब से जलता हुआ एक दीपक पाया गया। इस जलते हुए दीपक का वर्णन प्राचीन इतिहासकार ए. एस. लुईस ने अपनी पुस्तक में किया है, उनके अनुसार—यह दीपक मिट्टी के आपस में जुड़े दो बरतनों में बंद था। दीपक को दो हौजों से, जिनमें से एक सोने का तथा दूसरा चाँदी का था, जोड़ा गया था।

हौजों में एक अज्ञात तरल पदार्थ भरा हुआ था। इन बरतनों पर प्राचीन लिपि में खुदे हुए लेख से यह पता चलता है कि यह दीपक यूनानी देवता पलोटी को भेंट किया गया था। इस लेख के साथ यह भी खुदा हुआ था कि '... होशियार! इस दीपक के साथ कोई छेड़खानी न करे, न ही कोई इसे छूने की कोशिश करे; क्योंकि इसके अंदर सभी तत्त्वों को गुप्त रीति में इकट्ठा किया गया है तथा इस दीपक को शताब्दियों तक निरंतर जलते रहने की योग्यता प्रदान की गई है।' लुईस ने अपने अध्ययन के अनुसार इस दीपक की आयु पाँच सौ वर्ष बताई है। उनका अनुमान है कि यह दीपक चौथी शताब्दी में किसी समय जलाया गया होगा।

ऐसा ही एक दीपक सन् 1550 में इटली के नर्सीदा द्वीप, जिसे प्राचीनकाल में 'सीस' के नाम से जाना जाता था, के एक खेत में खुदाई के दौरान जलता हुआ पाया गया। वहाँ का एक किसान अपने खेत में काम कर रहा था। अचानक उसका फावड़ा एक बड़े पत्थर से जा टकराया। किसान ने सोचा कि नीचे खजाना होगा; क्योंकि उस स्थान पर कई बार पृथ्वी से खजाने निकल चुके थे। अतः उसने पास ही में काम करने वाले किसानों को सहायता के लिए बुलाया। कुछ देर के परिश्रम के बाद किसानों ने एक मकबरा खोद निकाला। उस मकबरे के दरवाजे सीसे तथा विभिन्न प्रकार के मसालों से जकड़े हुए थे। मकबरे का ऊपरी भाग भी बहुत मजबूत था।

जब किसानों ने मकबरे का दरवाजा तोड़ा, तो उनकी आँखें आश्चर्य से फैल गईं। उन्होंने देखा कि मकबरे में अँधेरा होने के बजाय तेज प्रकाश फैला हुआ था। यह तेज प्रकाश कब्र के पास रखे एक दीपक का था। किसान उस दीपक को उठाकर बाहर ले आए। उसकी बत्ती बिलकुल साफ और नई प्रतीत हो रही थी। शीशे के बरतन में बंद यह दीपक बाहर निकलने पर भी जल रहा था। भूत-प्रेत की माया समझकर किसान घबरा गए और उन्होंने उस शीशे के बरतन को धरती पर जोर से पटक दिया, जिससे बरतन टूट गया और दीपक बुझ गया।

इसी तरह अँगरेज इतिहासकार विलियम कैमडन अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'ब्रिटेन' में लिखते हैं कि सन् 1536 में जब बहुत से पुराने खंडहरों को खोदा जा रहा था, तो उस समय एक कब्र में एक ऐसा दीपक पाया गया, जो लंबे समय से निरंतर जल रहा था। इस दीपक के बारे में लोगों का मत था कि इसे सम्राट कांस्टेटाइन के शव के साथ दफनाया गया था। कैमडन इसके बारे में आगे लिखते हैं कि इस दीपक में तेल के स्थान पर पिघला हुआ सोना भरा हुआ था। इस बात से यह पता चलता है कि उस समय के प्राचीन वैज्ञानिक या कीमियागार सोने को ऐसे तरल रूप में बदल देने की कला में प्रवीण थे, जिससे दीपक को शताब्दियों तक जलाया जा सके।

इसी तरह सेंट ऑगस्टाईन (354-430ई.) ने अपनी पुस्तक में सौंदर्य की देवी वीनस के मंदिर में सदा से जलते रहने वाले एक ऐसे दीपक का उल्लेख किया है, जो खुली जगह पर रखा रहता था तथा जिस पर तेज बरसात और हवा का भी बिलकुल प्रभाव नहीं पड़ता था। शताब्दियों तक जलते रहने वाले दीपक का सबसे ताजा उदाहरण सन् 1840 में स्पेन के कुर्तबा नामक स्थान पर खुदाई करते समय पुरातत्त्व विभाग के कर्मचारियों को मिला था। यह दीपक एक रोमन परिवार की संयुक्त रूप से बनाई गई कब्र में जलता हुआ पाया गया था।

ये सभी रहस्यमय दीपक वैज्ञानिकों के लिए एक प्रश्नचिह्न बने हुए हैं। इस संबंध में उनके द्वारा जितने भी शोध किए गए, वे सभी अपर्याप्त ही साबित हुए। हालाँकि केंब्रिज विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों ने इन दीपकों की तरह के प्रकाश का आविष्कार किया, परंतु यह प्रकाश मात्र कुछ दिनों तक ही अस्तित्व में रह सका। इस दिशा में किए गए परीक्षणों से यह पता चलता है कि प्राचीनकाल के रसायन वैज्ञानिकों को भी उन रासायनिक यौगिकों का पर्याप्त ज्ञान था, जो आज के आधुनिक वैज्ञानिकों की नवीनतम खोज मानी जाती है।

अपने समय के प्रसिद्ध विधिवेत्ता तथा अनुसंधानकर्त्ता जोडोपेसी रोलिस (1523-1599) का यह विचार है कि प्राचीनकालीन रोमवासी एस्बेस्टस को खदानों से निकालने, उसे साफ करके काटने तथा उससे बत्तियाँ बनाने की कला में प्रवीण थे। इसी एस्बेस्टस की बत्तियों का उपयोग निरंतर जलने वाले दीपकों में किया जाता है। इस बारे में वे सम्राट कांस्टेट क्लोर्स के राज्यकाल का उदाहरण देते हैं। सम्राट कांस्टेट इन्हीं निरंतर जलने वाले दीपकों से अपने महल को चौबीसों घंटे निरंतर प्रकाशित करता था, जो चार लाख चालीस हजार वर्ग गज के क्षेत्र में फैला हुआ था। जोडोपेसी रोलिस इसके बारे में यह भी बताते हैं कि प्राचीनकाल में लोग ऐसा तेल निकालना जानते थे, जो उपयोग करने पर कभी भी खरच या खतम नहीं होता था, इस प्रकार के तेल से जलता हुआ एक दीपक उनके काल में सिरो की बेटी तोलियो की कब्र में पाया गया था। यह दीपक एक हजार पाँच सौ वर्ष तक निरंतर जलता रहा, लेकिन जब उसे कब्र में से निकालकर ताजी हवा में रखा गया, तो वह बुझ गया।

आधुनिक वैज्ञानिकों के लिए यह अनसुलझा रहस्य शोध का विषय है कि वर्षों तक जलने वाले ये दीपक किस पदार्थ के बने थे तथा उनमें ऐसा कौन-सा पदार्थ उपयोग में लाया जाता था, जिसके कारण वे निरंतर वर्षों तक जलते रहते थे? निश्चित रूप से प्राचीनकाल के लोगों का ज्ञान आज के वैज्ञानिकों की तुलना में भिन्न व उन्नत स्तर का रहा होगा, वे भले ही वर्तमान की तरह सुख-सुविधाओं का उपयोग न कर पाते रहे होंगे, लेकिन अपने जीवन को सुखी बनाने के साधन उन्होंने जुटा लिए थे, इसका प्रमाण ये दीपक हैं। ❑

मिथिला नगरी के महानंद परिव्राजक ने कठिन तपश्चर्या करके अनेकों सिद्धियाँ हस्तगत कर ली थीं। उनकी ख्याति सर्वत्र फैलने लगी। अनेक लोग उनकी सिद्धियों से लाभान्वित होने लगे। इतना होने पर भी महानंद को मानसिक शांति नहीं मिल पा रही थी। एक दिन इसी चिंता में वे अपनी कुटिया से निकलकर एक गाँव की ओर चल निकले। मार्ग में उन्हें किसी के कराहने का स्वर सुनाई दिया। उसे सुनकर उनका हृदय विगलित हो उठा तथा उन्होंने रात भर बीमार व्यक्ति की सेवा की। चौथा प्रहर होने पर ही उन्हें नींद आ पाई। उस रात्रि उन्हें अपूर्व शांति और स्थिरता का अनुभव हुआ। उनको बोध हुआ कि तप-साधना द्वारा अर्जित क्षमता का लोकहित में उपयोग न कर पाने के कारण ही उनका मन अशांत था। उन्होंने उसी उद्देश्य में अपनी तप-शक्ति को नियोजित करने का प्रण लिया।

वृक्ष बचेंगे तो ही जीवन बचेगा

धरती पर जीवन संतुलित बना रहे, आबाद रहे, इसके लिए प्रकृति ने जीव कोशिका के प्रादुर्भाव के साथ ही पादप कोशिका की भी रचना की थी। प्रकृति को यह भली भाँति ज्ञात था कि अपने अस्तित्व के लिए दोनों ही एकदूसरे पर आश्रित रहेंगे। यह सहजीवन जितना सहज होगा, दुनिया में उतनी ही खुशहाली-हरियाली रहेगी। कई हजार सालों तक पादप जगत व जीव जगत के बीच यह संतुलन बरकरार रहा, लेकिन धीरे-धीरे जब इनसानी आबादी विस्तार लेने लगी और उसके अस्तित्व के लिए प्राकृतिक संसाधन कम पड़ने लगे, तो इसके लिए पेड़-पौधों को काटा जाने लगा।

पेड़-पौधों को काटने से धरती का प्राकृतिक संतुलन सबसे अधिक प्रभावित हुआ, इसके कारण धरती की जलवायु प्रभावित हुई, प्रदूषित हुई, असंतुलित हुई और इसका भयंकर परिणाम आज मौसमों पर एवं जलवायु पर पड़ता दिख रहा है, जिसके कारण कहीं अतिवृष्टि, कहीं अनावृष्टि, कहीं ओलावृष्टि, कहीं अत्यधिक ठंढ तो कहीं अत्यधिक गरमी, कहीं भूकंप, तो कहीं समुद्री तूफान, तो कहीं भयंकर आँधी ने अपना कहर मचाया हुआ है।

धरती के इस जलवायु-असंतुलन को संतुलित करने का कार्य एकमात्र पेड़-पौधे ही कर सकते हैं। ये हमारे वातावरण को न केवल शुद्ध करते हैं, अपितु जलवायु के बीच आवश्यक संतुलन भी बैठाते हैं। ये पेड़-पौधे अपनी जड़ों से लेकर पत्तों तक के माध्यम से हमें लाभान्वित करते हैं। इसलिए हर स्तर पर हमें इन्हें बचाने, उगाने व देख-भाल करने की कोशिश करनी चाहिए।

पेड़-पौधों की शाखाएँ व पत्ते हमें छाया तो प्रदान करते ही हैं, साथ ही ये हवा की रफ्तार को भी तेज करने में सहायक होते हैं। पेड़-पौधों की पत्तियाँ वायु में मौजूद हानिकारक तत्त्वों को छानने में सक्षम होती हैं और वाष्पोत्सर्जन प्रक्रिया द्वारा वातावरण को नम रखने में भी सहायक होती हैं। पेड़-पौधों की जड़ें मिट्टी के स्थिरीकरण के द्वारा क्षरण को रोकती हैं। इनकी पत्तियाँ, टहनियाँ व शाखाएँ शोर यानी ध्वनि प्रदूषण को सोखती हैं और तेज बारिश के वेग को धीमा कर मृदाक्षरण रोकती हैं। पेड़-पौधों की जड़ें, पत्तियाँ व तने—पक्षियों, जानवरों व कीट-पतंगों के लिए आवास का एक माध्यम बनते हैं।

पेड़-पौधों में कुछ पौधे विशेष होते हैं, ये वातावरण में अत्यधिक ऑक्सीजन छोड़ते हैं, जैसे—नीम, पीपल, बरगद, तुलसी आदि। वनस्पति वैज्ञानिकों का यह मानना है कि हरेक पेड़-पौधे में एक विशेष तरह की खुशबू होती है, जिसे अरोमा कहते हैं। यह खुशबू पेड़-पौधों में मौजूद तैलीय पदार्थों के कारण होती है। तुलसी, पीपल या दूसरे ऐसे पेड़-पौधे जब वातावरण में ऑक्सीजन छोड़ते हैं, उस समय उसके साथ ही वातावरण में यह तैलीय पदार्थ भी फैलता है। उस समय इन पौधों के आस-पास रहने वाले लोग ऑक्सीजन के साथ-साथ इन तैलीय पदार्थों को भी ग्रहण करते हैं। इस प्रक्रिया से मानव शरीर व उसके स्वास्थ्य पर अच्छा प्रभाव पड़ता है।

हमारे देश में कई तरह के वृक्षारोपण अभियान चलाए जा रहे हैं, ताकि भारतभूमि की हरियाली लौट सके, लेकिन देखा जाए तो ये वृक्षारोपण अभियान एक रस्म की तरह अपनी भूमिका निभा रहे हैं; क्योंकि वृक्षारोपण तो हो जाता है, पेड़-पौधे भी बहुत संख्या में लग जाते हैं, लेकिन उनकी भली प्रकार देख-भाल नहीं हो पाती, जिसके कारण अधिकांश पेड़-पौधे जीवित नहीं रह पाते और इसके कारण वृक्षारोपण अभियान भी सफल नहीं हो पाता। मात्र गायत्री परिवार द्वारा प्रारंभ वृक्ष गंगा अभियान इस दृष्टि से सफल कहा जा सकता है।

अगर देश में पौधों की संपदा बढ़ानी है तो इसमें भी चयन करने की आवश्यकता है। हमारे देश में पौधों की 173 घुसपैठिया प्रजाति चिह्नित की गई हैं। इनका आगमन दुर्घटनावश, सजावटी पौधों के रूप में अथवा गलत चयन द्वारा हुआ है, लेकिन आज इसने बड़ा ही विध्वंसक रूप ले लिया है, जिससे मुक्ति पाना अब बहुत

जरूरी है। इन बुरे पेड़-पौधों ने भारतीय वन संपदा पर एक तरह से ग्रहण लगा दिया है। 'इनवेसिव' यानी 'बाह्य आक्रामक' प्रजातियाँ (बुरे पेड़-पौधे) हमारे प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र की संरचना एवं कार्यप्रणाली को व्यापक स्तर पर नकारात्मक रूप से प्रभावित करती हैं। जिससे स्थानीय जैव विविधता को खतरा, जल निकायों का क्षरण, फसल उत्पादन में कमी, अर्थव्यवस्था एवं मानवीय स्वास्थ्य पर पड़ने वाले नकारात्मक प्रभाव जन्म लेते हैं।

प्रमुख आक्रामक प्रजातियों में जलकुंभी, लेंटाना, गाजर घास, यूपेटोरियम, वन तुलसी, सीलोसिया (सफेद मुरगा) और आरजीमोन मेकसीकाना (सत्यानाशी) शामिल हैं। इन प्रजातियों ने वनों, चरागाहों, परतीभूमि, बागानों तथा कृषि क्षेत्रों सभी को नुकसान पहुँचाया है। लेंटाना सन् 1908 में भारत आया था, लेकिन इसने अब वस्तुत: पूरे देश को ही अपने कब्जे में ले लिया है। इसी तरह यूपेटोरियम ओडोरेटम जो पहले उत्तर-पूर्व तथा पश्चिमी घाट में देखा जाता था, अब सर्वत्र अपना प्रसार कर रहा है। इसी तरह गाजर घास एक गंभीर 'बाह्य आक्रामक' प्रजाति है, जिसने देश के 35 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र को प्रभावित किया है। ये तो कुछ उदाहरण मात्र हैं, लेकिन ऐसी ही कई प्रजातियाँ हमारे स्थानीय व उपयोगी पेड़-पौधों को भी समाप्त करती जा रही हैं; क्योंकि ये बहुत तेजी से फैलती हैं, विकसित होती हैं और पुन: उगने के लिए अपने बीज धरती पर आसानी से गिरा देती हैं। इन बाह्य आक्रामक प्रजातियों के निर्मूलन हेतु देश में बड़े स्तर पर शोधकार्य किए जा रहे हैं।

वर्तमान आँकड़ों के अनुसार—आज देश के 21 फीसदी भूभाग पर ही वन बचे हुए हैं। इसमें 2 फीसदी उच्चस्तरीय घने वन, 10 फीसदी मध्यम स्तर के घने वन और 9 फीसदी छितरे वन शामिल हैं। आज देश में कोई भी राज्य ऐसा नहीं है, जहाँ वन-संपदा में बढ़ोत्तरी हुई हो, क्योंकि वन और आदिवासी जो एकदूसरे के पूरक हैं, इनका बुरी तरह से दोहन हो रहा है। यदि आदिवासी नहीं रहेंगे तो जंगल भी नहीं बचेंगे। इन्हीं आदिवासियों के संरक्षण का बीड़ा उठाया है प्रो० आलोक सागर ने, जो कि 36 साल से आदिवासियों के बीच रह रहे हैं। आइआइटी दिल्ली से इलेक्ट्रॉनिक्स में स्नातक और टेक्सास यूनिवर्सिटी से डबल पी-एच०डी० करने के बाद वे वहाँ प्रोफेसर रहे, लेकिन इसके बाद वे वहाँ की नौकरी छोड़कर आदिवासियों के बीच जा बसे। न जाने किस संवेदना से प्रभावित होकर उन्होंने विदेशी भूमि के आकर्षण से निकलकर सीधे देश की मूल संपदा को सँवारने की ओर अपने कदम बढ़ा दिए।

मध्यप्रदेश के बैतूल जिले से लगे घने जंगलों में आदिवासियों के अलावा और कोई नहीं रहता। ऐसे ही एक आदिवासी बहुल गाँव कोचामाऊ में प्रो० आलोक कई सालों से रह रहे हैं। सारे आदिवासी इन्हें अपना मुखिया मानते हैं और इन्होंने भी वन और वनवासियों की सेवा के लिए अपना जीवन समर्पित कर दिया है। ये कल्ला नाम के एक आदिवासी के खेत में बनी छोटी-सी झोंपड़ी में गत 36 सालों से रह रहे हैं। इनका आदिवासियों जैसा ही रहन-सहन है, बढ़ी हुई दाढ़ी है, पहनने को बस एक अँगोछा है और सवारी के लिए साइकिल है और यही उनकी मुख्य पहचान है। ये वहाँ पर आदिवासी बच्चों को पढ़ाते-लिखाते हैं, लेकिन उन्हें आइआइटीयन बनने व झोंपड़ी से निकलकर महलों में जाने के ख्वाब नहीं दिखाते, बल्कि एक अच्छा आदिवासी बनने व जंगल, जंगल के महत्त्व व संरक्षण के प्रति जागरूक करते हैं।

जंगल का मतलब उनके लिए सिर्फ पर्यावरण संरक्षण तक ही सीमित नहीं है, इसलिए जंगल को वे वनवासियों का जीवन बताते हैं। वे कहते हैं कि वन के बिना वनवासी नहीं बचेंगे और वनवासी नहीं बचेंगे तो वन भी नहीं बचेंगे, इसलिए दोनों का होना जरूरी है। अभी तक प्रो.आलोक सागर ने विगत 11 सालों में लगभग 50 हजार फलदार वृक्ष लगवाए हैं। वे आदिवासियों के बीच भुखमरी, कुपोषण, अशिक्षा और बेरोजगारी को मिटाने का प्रयत्न भी करते आए हैं। उन्होंने आदिवासियों को फलदार वृक्ष लगाकर इनके द्वारा आर्थिक निर्भरता हासिल करना भी सिखा दिया है।

इस तरह के प्रेरक उदाहरण हमें यदा-कदा ही देखने को मिलते हैं, लेकिन ये कइयों के लिए प्रेरणास्रोत बन जाते हैं और कई हाथों से अपना कार्य करते हैं। निश्चित रूप से देश की वन संपदा को बचाने की जरूरत है, इसके साथ ही वृक्षारोपण अभियान को सफल बनाने के लिए उन पेड़-पौधों की देख-भाल की भी जरूरत है, जो इस अभियान में लगाए जाते हैं, इसके साथ ही देश की भूमि को बाह्य आक्रामक पेड़-पौधों की प्रजातियों से भी बचाने की आवश्यकता है। ❑

अंतर्जगत की यात्रा का ज्ञान-विज्ञान —4

नहीं संभव है, एक चित्त से दूसरे चित्त का ज्ञान

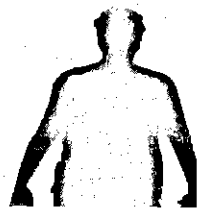

अंतर्यात्रा विज्ञान के प्रयोग से चित्त के रहस्य प्रकट होते हैं। चित्त में हमारे अस्तित्व की संपूर्ण कथा है। इसमें हमारे वर्तमान जीवन के साथ पूर्व के सभी जन्मों व जीवन की सारी कड़ियाँ व कहानियाँ हैं। भविष्य में होने वाले जीवन व उसके घटनाक्रमों की रूपरेखा भी इसी में है। हमारे अपने जीवन में जो कुछ घटित हुआ, जो घटित हो रहा है और जो घटित होगा, इन सभी का बीजारोपण कहीं-न-कहीं किसी-न-किसी रूप में चित्त में अवश्य उपस्थित होता है। हमारी स्मृतियाँ, संस्कार व कर्म के सभी रूप इसी चित्त में संचित व संगृहीत होते हैं। इसे जानने-समझने से हम अपने अतीत को जान-समझ सकते हैं। हम अपने वर्तमान में हो रहे क्रियाकलापों व घटनाक्रमों के कारण को पहचान सकते हैं। इसी के साथ बहुत कुछ अंशों में भविष्य के यथार्थ की झलकियाँ पा सकते हैं। इसे हम यों भी कह सकते हैं कि चित्त में हमारे अपने जीवन संसार के अथ से इति की समूची कथा है। इसमें प्रवेश होने पर इसे पढ़ना व समझना संभव है।

इस योगकथा की पिछली कड़ियों में चित्त की इन विशेषताओं को बताया गया है। अभी इससे पहले की कड़ी में कुछ ऐसा ही सत्य उद्घाटित किया गया था। इसमें कहा गया था कि चित्त की संग्रह, संचय व संकलन की बहुआयामी क्षमताओं के बावजूद यह स्वप्रकाशित नहीं है। यह ठीक है कि इसके माध्यम से ज्ञान होता है। इतने पर भी यह ज्ञात नहीं है। अपनी ज्ञान की क्षमताओं के बावजूद एक ही काल में चित्त और उसके विषय, इन दोनों के स्वरूप को जानना संभव नहीं हो सकता।

बाहर के पदार्थ का जब चित्त में प्रतिबिंब पड़ता है, तब द्रष्टा पुरुष चित्त और उसमें प्रतिबिंबित पदार्थ को जान सकता है, लेकिन चित्त स्वयं अपने स्वरूप को और दृश्य पदार्थ के स्वरूप को एक साथ नहीं जान सकता। जब चित्त प्रतिबिंबित पदार्थ को जानने का प्रयास करता है, उस समय वह अपने को नहीं जान पाता और जब स्वयं को जानने का प्रयास करता है, उस समय वह दृश्य पदार्थ को नहीं जान पाता। ऐसा केवल इसलिए है; क्योंकि चित्त स्वयं प्रकाशित नहीं है।

अब इससे आगे के सूत्र में महर्षि पतंजलि चित्त के सत्य को और अधिक स्पष्ट करते हैं—

चित्तान्तरदृश्ये बुद्धिबुद्धेरतिप्रसङ्गः स्मृतिसंकरश्च ॥ —4/21 ॥

शब्दार्थ—चित्तान्तरदृश्ये = एक चित्त को दूसरे चित्त का दृश्य मान लेने पर; **बुद्धिबुद्धेः अतिप्रसङ्गः** = वह चित्त फिर दूसरे चित्त का दृश्य होगा—इस प्रकार अनवस्था प्राप्त होगी; **च** = और; **स्मृति संकरः** = स्मृति का भी मिश्रण हो जाएगा।

भावार्थ—एक चित्त को दूसरे चित्त का दृश्य मान लेने पर, अनवस्था प्राप्त होगी और स्मृति का भी मिश्रण हो जाएगा।

इस सूत्र में महर्षि ने चित्त के संबंध में होने वाली जिज्ञासा या प्रश्न का समाधान प्रस्तुत किया है। चित्त ज्ञान का साधन है। इससे वस्तु, पदार्थ अथवा दृश्य का साक्षात्कार होता है। ऐसी स्थिति में यदि यह कहा जाए कि एक चित्त से दूसरे चित्त को विषय सहित देखा जाना संभव है और इस तरह से चित्त का विषय के साथ ज्ञान हो जाएगा तो यह मानने में क्या हानि है? इस शंका और जिज्ञासा का समाधान ही यहाँ पर महर्षि पतंजलि ने किया है।

चित्त को हम आधुनिक अर्थों में निजी संगणक (पर्सनल कंप्यूटर) के रूप में मान सकते हैं। हमारे अपने कंप्यूटर में अनेक तरह की सूचनाएँ, जानकारियाँ, आँकड़े अनेक-अनेक विधियों के अनुसार संगृहीत होते हैं। इसमें इंटरनेट जैसी कई सुविधाएँ भी हो सकती हैं। इस तरह के संपूर्ण सुविधापूर्ण व आधुनिकतम प्रणाली से युक्त कंप्यूटर होने के बावजूद इसके उपयोग के लिए प्रयोगकर्त्ता की आवश्यकता होती है। आधुनिकतम प्रणाली के बावजूद यह जड़ ही रहता है, चेतन नहीं हो सकता। लगभग यही स्थिति चित्त की है।

चित्त की कार्यप्रणाली आधुनिकतम कंप्यूटर प्रणाली से कहीं अधिक सक्षम है। जैसे—कंप्यूटर, इंटरनेट से जुड़ा होने पर आसानी से विश्वभर के ज्ञान से संपर्क कर सकता है, ठीक वैसे ही चित्त भी प्रकृति की व्यापक व रहस्यमय तथा जटिल व्यवस्था से जुड़ा है। इसके माध्यम से वह रहस्यमय व अलौकिक ज्ञान प्राप्त कर सकता है। कंप्यूटर हो या चित्त अपनी समूची ज्ञान क्षमता के बावजूद इनकी प्रणालियों में एक व्यवस्था है। यदि इस व्यवस्था का उल्लंघन होने लगे तो एक विचित्र अनवस्था या अव्यवस्था फैल जाएगी। यदि हम किसी विधि से किसी दूसरे के कंप्यूटर को खोल लें, तो काफी कुछ हद तक उसके रहस्य जान सकते हैं। ऐसा कभी-कभी होता भी है। जिसके तहत साइबर अपराध करने वालों के लिए एक सुनिश्चित दंड की व्यवस्था है। चित्त की अवस्था कंप्यूटर से कहीं अधिक जटिल है। इसमें किसी तरह का हस्तक्षेप होने से प्रकृति में भारी अव्यवस्था फैल जाएगी। तब इसे रोकने के लिए प्रकृति के अपने नियम व दंड विधान हैं।

अब कल्पना करें कि एक चित्त दूसरे चित्त को विषय सहित देखने लगे। ऐसी कल्पना के साथ हमें यह भी सोचना होगा कि हमें हमारे लिए ही सम्यक रूप से सही विधि से अपने चित्त को समझना व जानना संभव नहीं हो पाता। ऐसी स्थिति में दूसरे के चित्त को देखने, समझने व जानने के लिए अतिविशिष्ट क्षमताओं का होना आवश्यक है। ऐसी क्षमता होने पर एक चित्त के माध्यम से दूसरे या तीसरे चित्त को देखा जा सकता है। ऐसा करने पर चित्त दूसरे चित्त का विषय सहित ज्ञान तो पा सकेगा, परंतु इससे निजता व प्रकृति की व्यवस्था का उल्लंघन होगा और प्रकृति में अनवस्था व अव्यवस्था फैलेगी। ऐसा होने पर प्रकृति का नियम व विधान उसे नियंत्रित करने के लिए सक्रिय होगा।

कई बार कुछ असुर वैज्ञानिक ऐसा करने में सक्षम भी हो जाते हैं। तब व्यक्ति व समूह के जीवन में ऐसी अव्यवस्था का दोष उत्पन्न हो जाता है। इस स्थिति में चित्त की संरचना, संस्कार व स्मृति को पहचान कर ऐसे असुर वैज्ञानिक जीवात्मा के जीवन को अपने हित के लिए प्रयोग करने लगते हैं। उसके शुभ व अशुभ संस्कारों व कर्मों को अपने ढंग से अपने लिए उपयोग करते हैं। दूसरों से अपने व अपनों के दूषित व कलुषित कर्मों का भोग करवाते रहते हैं। ऐसा सृष्टि में कई बार हो भी जाता है। ऐसा होने पर प्रकृति की सूक्ष्म व्यवस्थाएँ सक्रिय हो जाती हैं। तब ऐसे असुर वैज्ञानिक प्रकृति के कोप व उसके दंड विधान के पात्र होते हैं।

ऐसा होने पर भी प्रकृति द्वारा निर्मित चित्त के स्वरूप, संरचना व इसकी प्रणालियों का संपूर्ण रूप से ज्ञान संभव नहीं हो पाता। जब भी ऐसा हुआ है, आंशिक रूप से ही हो सका है। इतने पर भी चित्त दृश्य ही रहता है, द्रष्टा नहीं हो पाता। जब एक चित्त दूसरे चित्त को देखता है तो द्रष्टा व ज्ञाता देखने वाले चित्त का स्वामी पुरुष ही होता है। वही प्रकृति की नैसर्गिक व्यवस्था भंग करने के कर्म का दोषी व भोक्ता भी बनता है। ऐसा होने पर स्मृतियों का व संस्कारों का मिश्रण होने लगता है। तब कर्मफल की व्यवस्था में परेशानी उठ खड़ी होती है। प्रकृति की व्यापक व्यवस्था तब इसका निवारण-निराकरण करती है और स्वाभाविक व्यवस्था पुनः सुचारु हो जाती है। ऐसी अव्यवस्था होने पर भी द्रष्टा पुरुष ही चेतन होता है और चित्त, जड़ प्रकृति के त्रिगुण का ही एक उपादान बना रहता है। प्रत्येक अवस्था में पुरुष नित्य-शुद्ध मुक्त होता है; जबकि चित्त स्वप्रकाशरहित होते हुए जड़ ही रहता है। ❑

प्रतिभा के विपुल भंडार मनुष्य की अंतःसत्ता में भरे पड़े हैं, उन्हें उभरने—प्रकट होने का अवसर उन दबावों के कारण आने ही नहीं पाता, जो कषाय-कल्मषों के रूप में आत्मसत्ता के ऊपर स्वेच्छा से लाद लिए गए हैं। लकड़ी को पानी पर तैरते रहना चाहिए, पर यदि उस पर भारी चट्टानें बाँध दी जाएँ तो अपना स्वाभाविक गुण तैरना दबकर रह जाता है। विभूतिवान होते हुए भी मनुष्य निकृष्टता की चट्टान सिर पर लाद लेने से अपना वास्तविक स्वरूप दिखाने की स्थिति में नहीं होता।

— परमपूज्य गुरुदेव

सकारात्मक रखें मन

व्यक्ति की मनोदशा या मूड बदलते ज्यादा देर नहीं लगती। पल भर में कभी मूड अच्छा हो जाता है और कभी बिगड़ जाता है। छोटी-छोटी बातें ही किसी अच्छे से बीत रहे दिन की खुशियाँ छीन लेती हैं। कई बार तो यह भी समझ में नहीं आता कि आखिर ऐसा क्या हुआ है, जिसके कारण मूड बिगड़ गया है ? कारण चाहे जो भी हो, हर व्यक्ति अपने मूड में आने वाले उतार-चढ़ाव से परेशान होता है और वह इसका समाधान जरूर चाहता है।

मूड यानी मनोदशा, जो कि हमारे विचारों पर निर्भर करती है। अगर मूड खराब है तो मन में बुरा एहसास कराने वाले विचारों की कड़ी बनने लगती है। उस समय हम कुछ ऐसा महसूस कर रहे होते हैं, जो हमें नहीं करना चाहिए और जो हमारे लिए अच्छा नहीं है। उस खराब मूड में ही हम वो कह देते हैं और कर देते हैं, जो हमें नहीं कहना चाहिए और न ही करना चाहिए।

ऐसा नहीं है कि सकारात्मक सोच रखने वालों का मूड खराब नहीं होता, क्योंकि मूड किसी का भी खराब हो सकता है और मूड खराब होने का कोई भी कारण हो सकता है। कभी-कभी दिन की शुरुआत ही गलत हो जाती है, जैसे—नींद पूरी न हो पाई हो तो शरीर में थकान होती है, सेहत हमारा साथ नहीं देती, तब भी हमारा मूड खराब हो जाता है। यदि कोई बात मन को परेशान कर रही है और हम उस पर ध्यान न देकर किसी अन्य कार्य में स्वयं को व्यस्त कर रहे हैं, तो भी मूड खराब होता है।

इस बारे में मनोविशेषज्ञों का कहना है—''सबसे पहले यह जरूरी है कि उन कारणों को जानने का प्रयास किया जाए, जिनके कारण मनोदशा बिगड़ रही है। अक्सर हम अपनी गलती नहीं मान रहे होते। कई बार दूसरों को लेकर हमारे अपने डर ही हम पर हावी हो रहे होते हैं, जिन्हें हम स्वीकारते नहीं हैं और उनसे घबराते हैं।''

कई बार ऐसा भी होता है कि जब हमारा मूड खराब होता है तो हम ऐसी बातें सोचने लगते हैं, जो हमारे बिगड़े मूड को और बिगाड़ती हैं और वो बातें हमें सही भी लगती हैं। ऐसे में जरूरत है कि दिमाग को एक जगह से हटाकर दूसरी जगह लगाया जाए। कई बार तो मूड समय के अनुसार खुद ही ठीक हो जाता है। मनोविशेषज्ञों का कहना है—''खराब मूड पर कभी विश्वास न करें; क्योंकि इस समय हम चीजों को सही रूप में नहीं देख रहे होते। कोई नुकसान न हो, इसलिए बेहतर यही है कि मूड बिगड़ने पर कम बातें करें, कोई फैसला न लें और खुद को याद दिलाएँ कि सब ठीक हो जाएगा।''

शरीरस्य गुणानां च दूरमत्यन्तमन्तरम्।
शरीरं क्षणविध्वंसि कल्पान्तस्थायिनो गुणाः॥

अर्थात—शरीर और गुण में बहुत अंतर है। मनुष्य का शरीर क्षणमात्र में नष्ट हो जाता है, पर उसमें जो गुण रहता है, वह कल्पांत तक स्थित रहता है।

मूड बिगड़ने पर यदि मन न हो तो भी मुस्कराने की कोशिश करें और इस मुस्कराहट को कुछ देर के लिए रोककर रखें। अपने लिए अच्छे शब्दों का इस्तेमाल करें। गहरा श्वास लें और छोड़ें। अच्छी पुस्तकें पढ़ें, अच्छे विचारों के संपर्क में आएँ, प्रेरणादायी वीडियो देखें या अच्छे कार्यक्रम देखें और मन को सकारात्मक ऊर्जा से भरने का प्रयास करें। मूड खराब होने पर अपना स्थान बदलना, खुली हवा में समय बिताना या घूमने के लिए चले जाना भी अच्छे विकल्प हैं। मूड खराब होने पर अपने आत्मीय परिजनों से बात करना भी सुकूनदायक होता है, जो मन को सँभालने में सहयोगी होता है। अतः मन खराब होने पर हमें नकारात्मक मनोदशा से बाहर निकलकर मन को तरोताजा बनाना चाहिए। ❑

जीवन को उमंगित रखने का अवसर हैं-पर्व

भारतीय पर्वों के मूल में आनंद और उल्लास का विशेष स्थान रहा है; क्योंकि दार्शनिकों की ऐसी मान्यता है कि सृष्टि आनंद से उद्भूत है, आनंद में स्थित है और आनंद में ही निवास करती है। पर्वों का उद्देश्य भी प्रत्येक क्षण को आनंद से परिपूर्ण कर देना और आनंद की अनुभूति का पल-पल अभ्यास कराना है। अज्ञान, दुःख, भय, शोक और मोह की निवृत्ति होने पर जिस आनंद की प्राप्ति होती है, वही पर्व है, वही उत्सव है।

पर्वों का मूल उद्देश्य हमारी लौकिक और आध्यात्मिक उन्नति है। हमारी संस्कृति में जीवन के प्रत्येक क्षण को उत्सव की तरह जीने का भाव रहा है। आनंद के क्षण तभी सार्थक होते हैं, जब उन्हें सभी के साथ मिल-बाँटकर बिताया जाए। भले ही राजा भगीरथ ने तप अकेले किया हो, लेकिन जब गंगा का अवतरण हुआ तो वे केवल भगीरथ की ही नहीं, अपितु सभी की गंगा हो गईं अर्थात कष्ट भले ही अकेले वहन किए जाते हों, लेकिन आनंद सामूहिकता में ही सार्थक होता है। हमारे भारतीय पर्व भी इसी प्रकार के हैं। सामाजिकता इन पर्वों की प्रकृति का अभिन्न अंग है। ये पर्व हमें अधिक-से-अधिक सामाजिक सरोकारों की ओर प्रवृत्त करते हैं।

पर्व-परंपरा हमारी संस्कृति में मिठास की तरह घुली हुई है और यह सिर्फ उत्सव भावना का ही निर्वहन नहीं करती, अपितु इसमें हमारी विचारधारा के बीज भी समाहित हैं। आज के युग में पर्व-परंपरा और भी ज्यादा प्रासंगिक हो जाती है; क्योंकि आज इनसान एकदूसरे से कट रहा है, दूर-दूर हो रहा है और वर्तमान समय की मुश्किलों में घिरता जा रहा है। उसका जीवन इतना ज्यादा व्यस्त हो गया है कि वह समाज को तो क्या, अपने परिवार को भी समय नहीं दे पा रहा।

आज मानव जीवन में तरह-तरह की कठिनाइयों ने दस्तक दी है। तनाव अब जीवन का अभिन्न हिस्सा बन गया है। ऐसे में पर्व हमें समाज और परिवार के साथ मिलकर खुशियाँ बाँटने का अवसर तो देते ही हैं, इसके साथ ही जीवन में प्रवेश कर गई नीरसता और एकरसता को भी कम करने का प्रयास करते हैं। पर्वों-त्योहारों की खुशी हमारी भावनात्मक आवश्यकता की पूर्ति करके मन को असीम शांति और सुकून देती है, ताकि हम नई ऊर्जा और ताजगी के साथ अपने दायित्व निर्वहन के लिए एक बार फिर से जागरूक हो सकें।

हमारे पौराणिक संदर्भों में पर्व-परंपरा के साथ व्रत करने का भी विधान रहा है। व्रत का अर्थ है—व्यक्ति का संकल्पित होना, नियमों का निर्धारण व उनका पालन करना। मानव जीवन में उत्तरोत्तर सुधार लाने के लिए संकल्प लेने से जो परिणाम प्राप्त होते हैं, वही पुण्य के रूप में हमारे जीवन में संचित होते हैं। व्रत एक तरह का तप भी है; क्योंकि व्रत-संकल्प पूरा करना सहज नहीं होता, इसके लिए शारीरिक संताप भी सहन करना पड़ता है।

व्रत से संबंधित एक श्लोक अग्निपुराण (175/10/11) में वर्णित है—

क्षमा सत्यं दया दानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
देवपूजाग्निहरणं संतोषोऽस्तेयमेव च॥
सर्वव्रतेष्वयं धर्मः सामान्यो दशधा स्मृतः॥

व्रत के दस भावों में क्षमा, सत्य, दया, दान, इंद्रिय-निग्रह, संतोष व अचौर्य (चोरी न करना) जैसे भाव मानव जीवन को उन्नत बनाने के लिए ही हैं। ये हमारे जीवन को परिष्कृत करके हमें सफल जीवन जीने की ओर प्रेरित करते हैं।

भारतीय पर्व हमारी संस्कृति, आस्थाओं, परंपराओं, संवेदनाओं और लोकजीवन का जीवंत रूप हैं। भारत एकमात्र ऐसा देश है, जहाँ त्योहारों से मौसम में बदलाव का ज्ञान मिलता है। पर्व-त्योहारों की मान्यताओं, परंपराओं और विचारों में हमारी सभ्यता और संस्कृति के विविध सरोकार छिपे हुए हैं। हमारे जीवन में रंग भरने वाली हमारी उत्सवधर्मिता की सोच मन में उमंग और उत्साह के नए प्रवाह को जन्म देती है। मन में त्योहारों की दस्तक होते ही हमारा जीवन ही बदलने लगता है।

ये पर्व हमारे जीवन को प्रकृति की ओर मोड़ते हैं, साथ ही घर-परिवारों में मेलजोल बढ़ाने तथा समाज से व्यक्ति को जोड़ने का भी कार्य करते हैं। पर्व ही हैं, जो हमें यह सिखाते हैं कि जीवन स्वयं एक उत्सव है। राष्ट्रीय पर्व हों या आध्यात्मिक पर्व, ये सभी हमारे अंदर की ऊर्जा में विशेष परिवर्तन करते हैं, हमारे अंदर नवप्राण फूँकते हैं और इसके साथ हमारे मन के भावों में भी परिवर्तन लाते हैं।

इन सभी भारतीय पर्व-त्योहारों में एक प्रेरणा है, एक संदेश है जैसे—विजयादशमी को हम बुराई पर अच्छाई की विजय के रूप में देखते हैं, तो दीपावली को हम अज्ञान के अंधकार को दूर करने वाले ज्ञान के प्रकाशपर्व के रूप में मानते हैं। इन पर्व-त्योहारों से केवल मान्यताएँ ही सुदृढ़ नहीं होतीं, बल्कि इनसे अंतरिक्ष जगत से विश्व में एक विशेष ऊर्जा का संचार होता है और इस ऊर्जा से लाभान्वित होने के लिए ही लोग इन पर्वों को मनाते हैं, व्रत-उपवास करते हैं और पर्वों के आनंद को महसूस करते हैं।

रामायण, महाभारत, गीता एवं उपनिषद् जैसे पावन ग्रंथों ने पर्वों के साथ हमारे देश को भी संस्कारित करने का प्रयास किया है। हमारे पर्व-त्योहारों को मनाने में रीति-रिवाजों से जुड़ी संस्कारबद्ध प्रक्रियाएँ सदियों से चली आ रही हैं और ये पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित भी हो रही हैं। हमारे पूर्वजों ने पर्व-त्योहारों को मनाने की जो शृंखला हमें दी थी, उसकी अवधारणा यही थी कि इनके माध्यम से व्यक्ति और समाज के शारीरिक, मानसिक व सामाजिक स्वास्थ्य में उत्तरोत्तर सुधार व विकास होता रहे।

पर्व-त्योहारों की शृंखला में हम जन्मतिथियाँ भी मनाते हैं, जैसे—गणेश चतुर्थी, रामनवमी, कृष्ण जन्माष्टमी, हनुमान जयंती, गंगा दशहरा, गीता जयंती, बुद्ध जयंती, महावीर जयंती, गुरुनानक जयंती, गांधी जयंती, बाल दिवस, शिक्षक दिवस आदि। साथ ही हम राष्ट्रीय पर्व भी मनाते हैं, जैसे—गणतंत्र दिवस, स्वतंत्रता दिवस आदि और विशेष त्योहार भी मनाते हैं, जैसे—गुरुपूर्णिमा, रक्षाबंधन, दशहरा, दीपावली, वसंत पंचमी, होली आदि। हम व्रत-पर्व भी मनाते हैं, जैसे—महाशिवरात्रि व्रत, वटसावित्री व्रत, निर्जला एकादशी व्रत, हरितालिका व्रत, करवाचौथ, श्री सूर्यषष्ठी व्रत, संकष्टी गणेशचतुर्थी व्रत आदि।

इस तरह भारतीय परंपरा में इन सभी पर्व-त्योहारों को मनाने की विशेष तिथियाँ हैं और उन्हीं तिथियों में इन्हें मनाने का विधान भी है; क्योंकि ये तिथियाँ अपने साथ विशेष ऊर्जा को लेकर आती हैं, इसलिए ये तिथियाँ विशेष होती हैं और इन्हें मनाने से व्यक्ति व समाज भी इस ऊर्जा से लाभान्वित होते हैं।

इस तरह हमारा तन-मन-जीवन उत्सवधर्मी है। पर्वों में लगने वाले मेले भी हमारी संस्कृति का परिचायक होते हैं और हमें संगठित होकर सहभागिता और आपसी समन्वय के साथ जीवन जीना सिखाते हैं। ये हमारे जीवन को अनुप्राणित करके न सिर्फ हमें सामाजिक व पारिवारिक दायित्वों के लिए प्रेरित करते हैं, अपितु हमारे जीवन के हर क्षण को आनंद के साथ जीने का अभ्यास भी कराते हैं। पर्व हमें स्वयं से व अपनों से जोड़ते हैं तथा पर्वों के दौरान मिलने वाला अवकाश हमारे अंदर नई ऊर्जा का संचार करता है और हमारे जीवन में उत्सव की उमंग बिखेरता है। ❑

द्रोणाचार्य कौरव सेना के सेनापति नियुक्त हुए। वे पहले दिन का युद्ध वीरतापूर्वक लड़े तो भी अर्जुन ही विजयी रहा। निराश दुर्योधन उनसे बोला—''गुरुदेव! अर्जुन तो आपका शिष्य मात्र है, फिर वह आपके ऊपर भारी कैसे पड़ रहा है।'' द्रोणाचार्य गंभीर हुए और बोले—''दुर्योधन! तुम ठीक कहते हो कि अर्जुन मेरा शिष्य है। मैं उसकी सारी विद्याओं से भी परिचित हूँ, किंतु उसका सारा जीवन संघर्ष करने में व्यतीत हुआ है; जबकि मैंने तुम्हारे दरबार में सुविधा के दिन गुजारे हैं। विपत्तियों से संघर्ष करने के कारण आज वह मुझसे ज्यादा बलवान है।'' संघर्षों से गुजरने से ही मनुष्य का व्यक्तित्व निखरकर आता है।

स्वस्थ जीवन के शाश्वत सूत्र

'जीवेम शरदः शतम्' की कल्पना है हमारे आयुर्वेद में। वैदिक जीवनचर्या के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को कार्य करते हुए 100 वर्ष तक स्वस्थ जीवन जीने का अधिकार है, लेकिन आज समय बदल गया है और हमारा जीवन प्रदूषण का शिकार हो गया है, अतः दिक् भी स्वस्थ नहीं और मन व अंतरात्मा भी तनाव के विष में घुल रहे हैं। इस कारण जीवन अनिश्चित हो गया है और मनुष्य की आयु भी घटती जा रही है।

प्रत्येक मनुष्य की अभिलाषा होती है कि वह स्वस्थ एवं दीर्घ जीवन का लाभ उठाए, स्वस्थ रहे, प्रसन्न रहे, लंबा जीवन जिए और सदा सुखी रहे। दुर्भाग्यवश वर्तमान में प्रदूषित वातावरण के कारण रोगियों की संख्या बढ़ी है। इसके कारण लोगों की मृत्यु अल्पायु में हो रही है और साथ ही रोगों के उपचार के लिए चिकित्सालयों की संख्या बढ़ी है, लेकिन उपचार इतना महँगा हो गया है कि उसका शुल्क सामान्य लोगों की पहुँच से बाहर हुआ है।

मेडिकल पत्रिका 'दि लेसेन्ट' के एक शोध अध्ययन के अनुसार—सन् 2015 में जल और वायु प्रदूषण जनित रोगों के कारण भारत में 25 लाख लोगों की मृत्यु हुई। यही हाल चीन, पाकिस्तान, बाँग्लादेश और केन्या का भी है, लेकिन भारत इसमें शीर्ष पर है। इसका कारण है भारत ने अपने आयुर्वेद के ज्ञान को विस्मृत कर दिया है, इसमें निहित स्वस्थ जीवन संबंधी सूत्रों की अवहेलना की है, जिसका परिणाम यह हुआ है कि वह जीवन जीने का तरीका व स्वस्थ रहने के सूत्र ही भूल गया है।

आयुर्वेद शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है—आयुष और वेद, **आयुर्वेदयति बोधयति इति आयुर्वेद** अर्थात जो शास्त्र आयु यानी जीवन का ज्ञान कराता है, उसे आयुर्वेद कहते हैं।

हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम्।
मानञ्च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते॥

—चरक संहिता 1/39

जिस ग्रंथ में हित आयु (जीवन के अनुकूल), अहित आयु (जीवन के प्रतिकूल), सुख आयु (स्वस्थ जीवन) एवं दुःख आयु (रोग अवस्था)—इनका वर्णन हो, उसे आयुर्वेद कहते हैं। आज संपूर्ण विश्व आयुर्वेद के महत्त्व व उपयोगिता को स्वीकारता दिखाई पड़ता है। आयुर्वेद का विकास ऋग्वेद से भी प्राचीन है। ऋग्वेद (10.97) में ऋषि कहते हैं—"औषधियों का ज्ञान तीन युग पहले से ही है। ऐसा बताते हैं कि औषधियों के सैकड़ों जन्मक्षेत्र हैं। कुछ फल वाली और कुछ फूल वाली हैं। औषधियों का प्रभाव शरीर के अंग-अंग और पोर-पोर पर होता है।"

मैकडनल और कीथ ने भी 'वैदिक इंडेक्स' (खंड-2) में यह बताया है कि भारतीयों की रुचि शरीर रचना से संबंधित चिंतन की ओर बहुत पहले ही आकर्षित थी। उन्होंने इसमें चरक और सुश्रुत का भी उल्लेख किया है।

हमारी आधुनिक सभ्यता में मानसिक रोग बढ़े हैं। इस संदर्भ में चरक संहिता के अनुसार—ईर्ष्या, शोक, भय, क्रोध आदि मनोविकार हैं। जब मन और बुद्धि का समान योग होता है, संतुलन ठीक रहता है, तब मनुष्य स्वस्थ रहता है और जब इनका अयोग, अतियोग और मिथ्या योग होता है, तब रोग पैदा होते हैं। आयुर्वेद में नींद को बहुत महत्त्व दिया गया है। इसके अनुसार—अच्छी नींद के कारण हमारी ज्ञानेंद्रियों की उचित प्रवृत्ति होती है और आयु नियत बनी रहती है; जबकि अनिद्रा में ज्ञानेंद्रियों की उचित प्रवृत्ति नहीं होती और इसके कारण सभी तरह के मानसिक विकार पैदा होते हैं। आयुर्वेद में शरीर के साथ मन को भी समान महत्त्व दिया गया है।

हमारा शरीर पंचमहाभूतों (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश) से मिलकर बना हुआ है। चरक संहिता के अनुसार—वायु एक विश्वव्यापी शक्ति है और वायु से ही आयु है। आयु का मूल प्राण है और प्राण की गति शुद्ध वायु पर आश्रित है। इसलिए खुली वायु में टहलना प्राणवर्द्धक और आनंदवर्द्धक है, लेकिन वर्तमान परिदृश्य

में वायुप्रदूषण के कारण प्रातः उठने, घूमने या योग आदि के माध्यम से शरीर को प्राण संवर्द्धित करने के भी लाभ कम हैं। इसी तरह जल हमारे शरीर में रस और रक्त का स्पंदन है, लेकिन भारत में जल भी प्रदूषण की समस्या से ग्रस्त है। अथर्ववेद को आयुर्वेद का स्रोत कहा गया है, जिसमें यह उल्लेख है कि जल औषधि तुल्य है, अतः यह जल 'रस व प्राण' से युक्त हो।

हमारे शरीर निर्माण का मुख्य स्रोत अन्न है। इसलिए अन्न की शुद्धता पर आयुर्वेद में बहुत जोर दिया गया है, लेकिन आज अन्न के पैदा होने से लेकर भंडारण होने की प्रक्रिया तक उसमें कीटनाशक रसायनों का घालमेल है। इसलिए अन्न का ओज, तेज और प्राण नष्ट हो रहा है। इसी तरह फल भी विषाक्त हो रहे हैं।

शरीर का स्वस्थ होना और रोगरहित होना बिलकुल ही अलग बातें हैं। महर्षि चरक ने यह बताया है कि स्वस्थ होना एक तरह का सुख है और रोगी होना एक तरह का दुःख है। आयुर्वेद में स्वस्थ रहने के स्वर्णिम सूत्र हैं। हमारे शरीर में वात, पित्त, कफ—ये तीन दोष हैं। सत्त्व, रज और तम—ये तीन गुण हैं। इन तीन गुणों का प्रभाव हमारे मन पर पड़ता है और इन तीन दोषों का प्रभाव हमारे तन पर पड़ता है। यदि हमारा मन रोगी है तो इसके कारण शरीर भी रोगी बनता है और यदि शरीर रोगी है तो यह मन को भी रोगी बनाता है। इस तरह शरीर और मन आपस में एकदूसरे से जुड़े हुए हैं और एकदूसरे को प्रभावित करते हैं।

त्रिगुणों में सर्वोत्तम गुण सत्त्व है, जिसके कारण मन स्थिर, शांत व प्रकाशित रहता है, रजोगुण के कारण मन चंचल व क्रियाशील रहता है और तमोगुण के कारण मन अंधकारित व जड़युक्त होता है, इसके कारण व्यक्ति में आलस्य-प्रमाद अधिक छाया रहता है। इन त्रिगुणों को प्रभावित करते हैं—सात्त्विक, राजसिक व तामसिक आहार। इसी कारण कहा गया है—जैसा खाए अन्न, वैसा बने मन।

त्रिदोषों की साम्यता शरीर को स्वस्थ रखने में सहायक होती है और इनमें असंतुलन के कारण विभिन्न तरह के शारीरिक रोग पनपते हैं। आयुर्वेद में स्वस्थ दिनचर्या, रात्रिचर्या, ऋतुचर्या की चर्चा की गई और इनमें ऐसे सूत्र दिए गए हैं, जिनसे मनुष्य स्वस्थ व दीर्घ जीवन जीने की ओर अपने कदम बढ़ा सकता है। ❑

एक राजा ने शास्त्रों में पढ़ा कि राजा प्रजापालक होता है। उसे लगा कि वह भगवान के समकक्ष है; क्योंकि वह औरों का पालन-पोषण करता है। दिनोदिन उसका अहंकार बढ़ने लगा। एक दिन एक संन्यासी उससे मिलने गए। राजा की दंभयुक्त बातें सुनकर संन्यासी ने राजा से पूछा—"राजन्! तुम्हारे राज्य में कितने कीड़े-मकोड़े हैं।" राजा चुप हो गया। संन्यासी बोले—"जब तुम यही नहीं जानते तो उन कीड़े-मकोड़ों का पालन कौन करता है?" राजा बोला—"तो क्या भगवान इन कीड़े-मकोड़ों का पालन करते हैं?" संन्यासी के 'हाँ' कहने पर राजा ने एक कीड़े को डिबिया में बंद कर दिया और बोला—"अब मैं इस डिबिया को सुबह खोलूँगा, तब देखूँगा कि भगवान इस कीड़े को भोजन कैसे पहुँचाते हैं।" सुबह डिबिया खोलने पर राजा ने देखा कि वह कीड़ा चावल का एक दाना खा रहा है। राजा को ध्यान आया कि डिबिया बंद करते समय उसके माथे पर लगे तिलक से चावल का एक दाना निकलकर डिबिया में गिर गया। उसका अभिमान चूर-चूर हो गया। समस्त जीवों के पालक भगवान ही हैं—इस भाव के साथ जीवन जीने पर कभी अभिमान नहीं होता।

कहानियों की दुनिया से दूर होते बच्चे

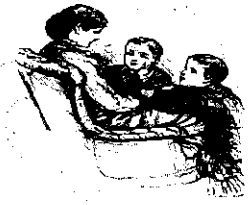

बच्चों में कहानियाँ सुनने के प्रति एक अद्भुत आकर्षण होता है, इनके माध्यम से वे बहुत कुछ सीखते हैं। कहानियों के द्वारा उनका मानसिक व काल्पनिक विकास होता है और उनके अंदर समझदारी भी बढ़ती है। बच्चों को शाम ढलते ही कहानियाँ सुनाकर उनका मन बहलाने और सुलाने की परंपरा मानव सभ्यता के इतिहास जितनी ही पुरानी है। बहुत छोटे बच्चों की नींद के लिए माँ की गोद या लोरियाँ ही काफी हैं, लेकिन बढ़ते बच्चों की कल्पनाशीलता को नया आयाम देने व उनके अंदर समझदारी विकसित करने के लिए कहानियाँ सबसे उत्तम व श्रेष्ठ विकल्प हैं, क्योंकि कहानियों में सामान्य ढर्रे से हटकर कुछ नयापन, कुछ अजूबा, कुछ रोमांचकता होती है, जो उनके विकसित होते हुए मन को विशिष्टता प्रदान करती है। शायद इसलिए प्राचीनकाल से ही किस्से-कहानियों के माध्यम से बच्चों को सीख देने की परंपरा चली आ रही है और रात्रि में सोते समय कहानियाँ सुनना उन्हें सबसे अधिक रुचिकर लगता है, क्योंकि सोने के उपरांत स्वप्न में भी वे इन कहानियों की किसी दुनिया में प्रवेश कर जाते हैं।

सदियों से कहानियों का स्वरूप कई आकारों में ढलता आया है, कालखंड के अनुसार कहानियाँ अपना नया आकार लेती भी रही हैं। कहानियों में किसानों, साहूकारों, सामंतों, राजा-रानियों आदि के किस्से मशहूर रहे हैं, इसके साथ ही जंगली जानवरों की कहानियाँ भी बच्चों द्वारा बेहद पसंद की जाती रही हैं। इसी प्रकार किस्सों में रोमांच पैदा करने के लिए कालांतर में इनमें जादूगर, राक्षस, जिन्न, भूत-प्रेत, देवदूत और परियों की कहानियाँ भी जुड़ती चली गईं। इसके साथ ही कहानी कहने की शैली में भी विभिन्न तरह के बदलाव समय-समय पर आए।

बच्चों में अपनी भाषा और साहित्य के प्रति अभिरुचि पैदा करने के लिए कहानियों को आधार बनाना वह सबसे पहली कोशिश थी, जो उनके दिलों को स्पर्श कर सकी। अँगरेजी में बच्चों की कहानियों की पुस्तकें 'बेड टाइम स्टोरीज' के नाम से प्रसिद्ध हैं। आज भी बच्चे कहानियाँ पढ़ना, सुनना व देखना सबसे अधिक पसंद करते हैं। किस्से-कहानियों के प्रति यह आकर्षण दुनिया भर के बच्चों में एक जैसा ही रहा है। आदिम जनजातियों से लेकर विकसित सभ्यताओं तक बच्चों में बदलती रुचियों और देश, काल, परिस्थितियों के अनुरूप कहानियों के स्वरूप और इन्हें कहने के तरीकों में थोड़े बदलाव जरूर आए हैं, लेकिन इनके प्रमुख पात्र जैसे राजा-रानी, भूत-प्रेत, राक्षस और परियाँ आज भी अपनी जगह से विस्थापित नहीं हो पाई हैं। वर्तमान में कहानियों में कुछ नए पात्रों का भी प्रवेश हुआ है। जैसे दूसरे ग्रहों से आए प्राणी, अंतरिक्ष यात्री, आकाशीय युद्ध की घटनाएँ, अच्छे-बुरे वैज्ञानिक, दुर्दांत अपराधी और जासूस भी उनमें शामिल हो गए हैं।

दुर्भाग्यवश पिछले कुछ दशकों में बच्चों की जिंदगी में मोबाइल फोन, टीवी, वीडियोगेम आदि के बढ़ते इस्तेमाल के साथ महानगरों के बच्चों में मौखिक किस्सों के प्रति आकर्षण थोड़ा कम हुआ है। पहले गली-मुहल्ले में कहानी कहने की कला में माहिर एक-दो लोग हुआ करते थे, जिनके आस-पास शाम ढलते ही बच्चे एकत्रित हो जाया करते थे। उनमें उत्सुकता और जिज्ञासा का एक अजीब-सा माहौल होता था, किस्से-कहानी खतम होते ही भारी आँखों में नींद लिए बच्चे माँ की गोद में लौट जाते थे। जब सामूहिकता की यह संस्कृति लुप्त होनी शुरू हुई तो यह जिम्मेदारी घर-परिवार के सदस्यों ने सँभाल ली। दादी-नानी द्वारा सुनाए जाने वाले किस्से आज भी लोग याद करते हैं, लेकिन वर्तमान में एकल परिवारों के अकेलेपन, जीवन की जटिलताओं और आपा-धापी में शहर के लोगों के पास अब अपने बच्चों को देने के लिए पर्याप्त समय तक नहीं है और न ही उन्हें कहानियाँ सुनाने का धैर्य है। इसका परिणाम यह हुआ है कि बच्चों की मानसिक जरूरतें उन्हें कॉमिक्स, टीवी में कार्टून शो, वीडियो गेम्स की तरफ खींच ले गई हैं और ये सब बच्चों को निरंतर अकेला बना रहे हैं।

बच्चों तक कहानियाँ पहुँचने के माध्यम चाहे जो भी हों, लेकिन बच्चों की दिलचस्पी इन काल्पनिक कहानियों में आज तक बनी हुई है और आगे भी बनी रहेगी। समाज में बढ़ती जटिलताओं और शहरीकरण के साथ कहानियाँ कहने की परंपरा को देर-सबेर नष्ट होना ही है, इस तथ्य को समझकर दुनिया भर के मनोवैज्ञानिक किस्सों की मौखिक परंपरा का विकल्प खोजने के लिए चिंतित हैं; क्योंकि यह माना जा रहा है कि टेलीविजन के सहारे तेजी से फैल रही कथा सुनाने की दृश्य परंपरा, बच्चों को समाज से काटकर अकेला कर देने की घातक भूमिका निभा रही है। इससे बच्चे न केवल अपने आस-पास की दुनिया में दिलचस्पी खोते जा रहे हैं, बल्कि धीरे-धीरे अवसादग्रस्त भी हो रहे हैं।

इन दिनों यूरोपीय देशों में बच्चों के मानसिक व सामाजिक विकास तथा उनमें कल्पनाशक्ति की उर्वरता में वृद्धि के लिए बालकहानियों की महत्ता को देखते हुए पाठ्य परंपरा में इन्हें जीवित रखने के प्रयास हो रहे हैं। इसके लिए योजनाबद्ध तरीके से बच्चों के लिए किताबें और कॉमिक्स लिखे जा रहे हैं और उन्हें कम कीमत पर उपलब्ध कराया जा रहा है। विश्वप्रसिद्ध पंचतंत्र की कहानियों के माध्यम से पं० विष्णु शर्मा ने अबोध, चंचल व मंदबुद्धि राजकुमारों को समझदार, नीतिकुशल, कुशाग्रबुद्धि वाला बना दिया। इन कहानियों में पशु-पक्षियों की कहानियों को माध्यम बनाकर बच्चों को सांसारिक जीवन की सच्चाइयों से परिचित कराने का सफल प्रयास किया गया है। आज भी पंचतंत्र की इन कहानियों के प्रति बच्चों में दिलचस्पी बनी हुई है। वर्तमान में बच्चों के लिए देश की मुख्य भाषाओं में पौराणिक, ऐतिहासिक और विज्ञान की कथाओं पर आधारित सैकड़ों पुस्तकों के अलावा पारिवारिक और सामाजिक मूल्यों पर आधारित उपन्यास, कहानी संग्रह, महान व्यक्तियों की प्रेरक जीवनियाँ, पशु-पक्षियों और पर्यावरण के विषय में जानकारी देने वाली बहुत सारी पुस्तकें प्रकाशित हैं। युग निर्माण मिशन ने भी बच्चों के मनोविकास के लिए 'बाल निर्माण की कहानियाँ' प्रकाशित की हैं।

मौखिक कहानियाँ सुनाने की टूटती परंपरा की वजह से दुनिया भर के बच्चों की तरह अपने देश के बच्चों के आगे भी एक बड़ा शून्य उपस्थित हुआ है। इस शून्यता को भरने की ईमानदार कोशिश नहीं हो रही है, अत: ऐसे उपाय व तरीके खोजने की जरूरत है, जो बच्चों को इस अकेलेपन की ओर जाने से रोक सकें और उन्हें पारिवारिक व सामाजिक जिंदगी में बेहतर ढंग से जीवन जीना सिखा सकें। बेहतर यही होगा कि परिवार के बड़े सदस्य इस बारे में अपनी जिम्मेदारी समझें और बच्चों के कोमल मन को समझते हुए उन्हें प्रेरक कहानियों के माध्यम से जीवन जीने की कला में प्रवीण करें। ❑

एक दु:खी, चिंतित व निराश व्यक्ति एक बगीचे में एक पौधे के पास जाकर बैठा। वह पौधा उस व्यक्ति से बोला—"मित्र! इतने परेशान क्यों हो? हमारा जीवन देखो। हम कितने प्रसन्न हैं। हम जीवन को खेल मानकर जीते हैं। हमारे मन में शांति है और हमारे भीतर का उल्लास ही बाहर सुगंध बनकर निकलता है। हमारे अंदर की खुशी ही फूलों के रूप में बिखर जाती है। सभी हमें प्रेम करते हैं और हम भी सभी को प्रसन्नता प्रदान करते हैं। जीवन जीने की यही कला है।

पौधे के शब्दों ने उस व्यक्ति को संबल प्रदान किया और वह बोला—"मित्र! आज तुमने मुझे जीवन जीने की कला से परिचित कराया। स्वल्प साधन होते हुए भी सुखी जीवन कैसे जिया जा सकता है, यह तुम जानते हो। हम मनुष्य पर्याप्त साधन होते हुए भी दु:खी ही रहते हैं। हमें भी तुम्हारी तरह जीने का प्रयास करना चाहिए। आंतरिक उल्लास ही सुखी जीवन का आधार है।"

शयन को एक कला बनाएँ

शयन या नींद भी एक कला है, जिससे बहुत से लोग अनजान हैं। जिस तरह मृत्यु एक कला है, इस कला में जो माहिर हैं, उन्हें मृत्यु से भय नहीं होता, जो जीवन जीने की कला में कुशल हैं, उन्हें जीवन के संकट, परेशानियाँ भी अनमोल उपहार देकर जाते हैं, उसी तरह शयन का भी विशेष महत्त्व है; क्योंकि शयन की प्रक्रिया में हम थोड़े समय के लिए ही सही अपने अवचेतन मन में प्रवेश करते हैं। रात्रि में शयन की प्रक्रिया मृत्यु के एक छोटे पड़ाव की तरह है, एक अल्पकालीन मृत्यु की तरह है। इसलिए युगऋषि पं. श्रीराम शर्मा आचार्य ने रात्रिकालीन शयन की प्रक्रिया को तत्त्वबोध की साधना में शामिल किया है, ताकि लोग शयन की कला सीख सकें।

अक्सर हम ढेर सारी चिंताओं का बोझ लेकर अपनी शय्या पर सो जाते हैं। ऐसा होने पर हमारी दिन भर की चिंताएँ, तरह-तरह के तनाव, दुःख-दरद, आशा-निराशा के पल आदि नींद में भी हमारा पीछा नहीं छोड़ते और हमारी नींद को प्रभावित करते हैं। नींद वह द्वार है, जिसके द्वारा हमारा चेतन और जाग्रत मन, रचनात्मक रूप से अवचेतन मन में प्रवेश कर जाता है। निद्रा में मनुष्य अपने बारे में स्वयं की अवधारणाओं से अवचेतन को प्रभावित करता है।

नींद एक गहन विश्राम की प्रक्रिया है, लेकिन इस प्रक्रिया में हम स्वप्न भी देखते हैं। हमारे स्वप्न एक तरह का विरेचन हैं। हमारे अंदर मन में जो कुछ भी है, वह स्वप्न के माध्यम से उभर-उभरकर सामने आता है, अच्छे-बुरे दृश्यों के रूप में उभरता है। कभी इसमें दमित इच्छाएँ उभरकर सामने आती हैं तो कभी हमारा डर हमारे सामने होता है। कभी ऐसे परिदृश्य आते हैं, जिनसे हम पूर्णतया अपरिचित होते हैं तो कभी परिचित लोगों से हम स्वप्न में रूबरू होते हैं।

जब हम शयन के लिए लेटे हुए नींद के आगोश में जाने की तैयारी कर रहे होते हैं तो हमें यह याद रखना चाहिए कि हमारे दिमाग में आया आखिरी ख्याल नींद के दौरान चार घंटे तक हमारे अवचेतन मन में बरकरार रह सकता है। यह एक तरह की प्रोग्रामिंग के समान है, जिसकी प्रक्रिया नींद में अवचेतन तक पहुँचने से पहले मन में चल रहे विचार से शुरू हो जाती है और अगले चार घंटे तक चलती रहती है। इसलिए यदि हो सके तो अपने शयनकक्ष में कोई अच्छी तसवीर, अच्छी प्रार्थना या मंत्र लिखकर लगा लेना चाहिए, ताकि सोते समय हम इन्हें देखकर, पढ़कर, इन पर मनन-चिंतन करते हुए सोएँ; क्योंकि शयन से पूर्व का समय सबसे महत्त्वपूर्ण होता है, ठीक उसी तरह जैसे मृत्यु से पूर्व का समय महत्त्वपूर्ण होता है।

भगवान श्रीकृष्ण श्रीमद्भगवद्गीता के आठवें अध्याय के पाँचवें श्लोक में कहते हैं—

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥

अर्थात—जो पुरुष अंतकाल में मुझको ही स्मरण करता हुआ शरीर को त्यागकर जाता है, वह मेरे साक्षात् स्वरूप को प्राप्त करता है—इसमें कोई भी संशय नहीं है।

इसी तरह हम नींद में जाने से पूर्व जिन भावों व विचारों के साथ रहते हैं, वे सभी हमारे अवचेतन मन में घुसपैठ कर जाते हैं और हमें प्रभावित करते हैं। इसलिए शयन से पूर्व मन को स्वसंकेत (ऑटोसजेशन) भी दिया जा सकता है और शयन के पूर्व के क्षणों का उपयोग हम उन बिंदुओं पर विचार करने में भी कर सकते हैं, जिन्हें हम अपने जीवन में घटित होते हुए देखना चाहते हैं। उस समय हम अपनी उन समस्याओं के समाधान के बारे में भी सोच सकते हैं, जो हमारे मन को व्यथित कर रही हैं। निश्चित रूप से देर-सबेर हमें ऐसा करने का सुपरिणाम मिलता है। ऐसे कई वैज्ञानिकों के उदाहरण हैं, जिनको अपनी समस्याओं का समाधान स्वप्न में मिला। और ऐसे लोगों के भी उदाहरण हैं, जिन्होंने नींद में जाने के पूर्व क्षणों का उपयोग अपनी समस्याओं का समाधान पाने के लिए किया और बाद में उन्हें इसका उचित समाधान मिला।

अगर शयन करने से पूर्व कोई व्यक्ति चिंता, तनाव या भय से घिरा हुआ है, तो ऐसी मन:स्थिति में कभी भी शयन नहीं करना चाहिए, बल्कि पहले गहरा श्वास लेना चाहिए, अच्छी पुस्तकों का अध्ययन करना चाहिए, कुछ पल के लिए ध्यान करना चाहिए और मन को सुकून-शांति प्रदान करने वाले दृश्यों में लगाना चाहिए। कोई अच्छी प्रार्थना करके सोना चाहिए, परंतु तनाव में शयन करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए, क्योंकि शयन के समय यदि मन में भय, चिंता और तनाव, अवसाद बना रहता है तो ये मनोभाव हमारे मन को नकारात्मक रूप से प्रभावित करते हैं।

अत: याद रखें कि गहरी नींद में जाने के ठीक पहले के पाँच मिनट हमारे लिए बहुत कीमती होते हैं। यदि नींद के इन क्षणों के उपयोग करने की कला सीख ली जाए, तो हम अपने जीवन में आने वाले निराशा, चिंता, तनाव, भय जैसे मनोभावों को सदा के लिए दूर कर सकते हैं और अपने अवचेतन मन को इस तरह तैयार कर सकते हैं कि हमारे जीवन में खुशी, शांति, संतोष, प्रसन्नता, कृतज्ञता, दयालुता आदि शुभ भावों का समावेश हो जाए।

अत: हमारे शयन कक्ष में ऐसी तसवीरें होनी चाहिए, जो हमें अपने जीवनलक्ष्य की ओर ले जाएँ, शयन के समय हमें ऐसी प्रार्थनाएँ करनी चाहिए, जो हमारा मार्गदर्शन करें और हमें भटकने से बचाएँ। साथ ही शयन के समय हमारे पास एक ऐसी डायरी होनी चाहिए, जिस पर हम अपने मनोभावों को लिख सकें। हमारी इच्छाएँ, स्वप्न, परेशानियाँ व प्रश्न आदि को यदि हम अपनी डायरी में लिख दें, तो फिर ये हमारे मन पर बोझ की तरह साथ नहीं रहते, बल्कि मन से उतर जाते हैं और मन भी इन्हें लिखने से हलका हो जाता है। इसके साथ ही डायरी में दिन भर किए जाने वाले कार्यों का आत्मविश्लेषण भी किया जा सकता है और अपने आगामी कार्यों की समय-सारिणी, कार्यों की सूची व कार्यों की वरीयता का क्रम भी अंकित किया जा सकता है।

अत: शयन की महत्ता को समझते हुए इसे अच्छा बनाने के लिए जो संभव हो, वो करना चाहिए और अपने मन को शुभ विचारों से ओत-प्रोत करना चाहिए, इससे हमारा अवचेतन मन हमें सकारात्मक ढंग से प्रभावित करता है और आगामी दिनचर्या की चुनौतियों के लिए पूर्ण रूप से तैयार कर देता है। ❑

महर्षि शल्विन की प्रथम पत्नी श्लेषा और दूसरी पत्नी इतरा, भिन्न-भिन्न जातियों की थीं। दोनों में परस्पर अत्यंत प्रेम था। संयोगवश दोनों ने साथ-साथ पुत्र को जन्म दिया। महर्षि दोनों पुत्रों में कोई भेद नहीं करते थे, लेकिन एक दिन महर्षि ने इतरा के पुत्र ऐतरेय को यज्ञशाला में आने से रोक दिया; जबकि श्लेषा के पुत्र को आने दिया। उसको ऐसा लगा कि जाति भिन्नता के कारण मुझसे भेद रखा गया है। उसने अपनी माँ से पूछा—"अब मैं यज्ञ कहाँ करूँ?"

माँ बोली—"पुत्र! तू अपनी आत्मा को गुरु मान और धरती को यज्ञस्थल मानकर अपनी उपासना आरंभ कर।" बालक ने माँ के बताए मार्ग का अनुसरण किया और साधना कर योगी बन गया। जब वह घर लौटा तो दोनों माँओं ने उसका भावभरा स्वागत किया। उसके पिता ने उसके द्वारा रचित पांडुलिपियों को देखा तो उसे हृदय से लगा लिया। वह पांडुलिपियाँ वेदों की विशुद्धतम व्याख्याएँ थीं, जो ऐतरेय ब्राह्मण के नाम से प्रसिद्ध हुईं। पुत्र की इस उपलब्धि पर महर्षि फूले नहीं समाये। ऐतरेय की इस उपलब्धि ने यह सिद्ध कर दिया कि व्यक्ति जन्म से नहीं, कर्मों से द्विज बनता है।

साहस के धनी ही पाते हैं सफलता

यह राह नहीं है फूलों की,
काँटे भी इस पर मिलते हैं।
ले करके दरद जमाने का,
बस, हिम्मत वाले चलते हैं॥

जिंदगी हमारी फूलों की सेज नहीं है, यहाँ काँटे भी बहुत हैं। जो भी इस दुनिया में आया है, उसे किसी-न-किसी मोड़ पर कम या अधिक कड़ुई सच्चाइयों का सामना करना ही पड़ा है, जो काँटों की तरह नुकीली, पैनी होती हैं और चुभने पर हमें पीड़ा देती हैं। तब जीवन में आगे बढ़ने के लिए खुद को बेखौफ, साहसी बनाने की जरूरत होती है, ताकि राह की कठिनाइयों से डरकर नहीं, बल्कि डटकर मुकाबला किया जा सके और सँभलकर चला जा सके, ताकि राह के काँटे हमें चुभ न सकें।

राह के काँटे हमें चुभे नहीं, इसके लिए दो तरीके हैं, पहला—आगे बढ़ते हुए काँटों को भी बीना जाए और उन्हें रास्ते से हटा दिया जाए और दूसरा तरीका यह है कि पैरों में जूते पहन लिए जाएँ, ताकि कोई भी काँटा हम तक न पहुँच सके। दृढ़ साहस जूतों की तरह ही मजबूत और हमें आगे बढ़ाने में सहायक होता है। अतः साहस हमारे व्यक्तित्व का एक बहुत ही खूबसूरत गुण है, जो अपने अंदर साहस नहीं रखते, साहस के साथ प्रयास नहीं करते, हिम्मत करके आगे नहीं बढ़ते, वे अपनी जिंदगी में कुछ भी नहीं कर पाते।

व्यक्ति को अपनी जिंदगी में सफलता कभी एक ही प्रयास में नहीं मिलती। कई नाकाम कोशिशों के बाद भी जुटे रहना पड़ता है। कितनी ही बार यही जुझारूपन हमें मंजिल तक भी ले जाता है। प्रसिद्ध उद्यमी एवं एमेजोन नामक ई-रिटेलर संगठन के संस्थापनकर्त्ता एवं विश्व के सबसे धनी व्यक्ति जेफ बेजोस का कहना है कि 'अगर आप जुझारू नहीं हैं तो आप तुरंत हार मान लेंगे और अगर आपमें लचीलापन नहीं है तो दीवार में सिर मारने लगेंगे। नतीजा यह होगा कि जिस समस्या पर काम कर रहे हैं, उसका कोई दूसरा हल नहीं ढूँढ़ पाएँगे।'

हेलन केलर जो कि कला में स्नातक करने वाली पहली बधिर व नेत्रहीन महिला थीं, उनका कहना था कि 'जिंदगी या तो एक खतरों भरा खेल है या कुछ नहीं।' इसका तात्पर्य यह है कि यदि साहस रखते हुए प्रयास किए जाएँ तो कठिन कार्य भी आसानी से किए जा सकते हैं और यदि प्रयास ही न हो तो सरल कार्य भी अत्यंत कठिन प्रतीत होते हैं। अतः यदि हम एक बार अपनी मौजूदा स्थिति को बदलने की ठान लें, तो फिर रास्ते में आने वाली बाधाएँ भी हमें डराना छोड़कर रास्ता देने लगती हैं। एक-एक जोखिम को पार करते हुए आगे बढ़ने के साथ यह विश्वास भी गहराई से मजबूत होने लगता है कि सही दिशा में प्रयास करने से बड़ी-से-बड़ी मुश्किलों से पार पाया जा सकता है।

अमेरिकी विद्वान यूजीन फिचवेयर का कहना है कि शुरुआत करने के साहस से ही व्यक्ति को ख्याति प्राप्त होती है और उसकी प्रशंसा उसी क्षण से शुरू हो जाती है, जब वह कोई शुरुआत करने का साहस करता है। ऐसे किसी भी क्षण में जब कोई व्यक्ति सामान्य से हटकर बड़ा करने की सोचते हैं तो उनके मन में साहस का होना बहुत जरूरी होता है।

समाज सेविका ऑपरा विन्फ्रे का कहना है कि जीवन का सबसे बड़ा जोखिम यही है कि हम जोखिम उठाने का साहस कर सकें। उनका यह मानना है कि हम सभी के जीवन में साहस का बड़ा महत्त्व है; क्योंकि जोखिम उठाने के साहस से ही लोग अपनी इच्छाओं को पूरा करते हैं। अगर व्यक्ति जोखिम उठाने से कतराता है तो उसे मनोवांछित सफलता भी हासिल नहीं हो पाती। परमपूज्य गुरुदेव ने कहा है कि असफलता मात्र यह सिद्ध करती है कि सफल होने का प्रयास पूर्ण मनोयोग के साथ नहीं किया गया। जो पूर्ण मनोयोग एवं अदम्य साहस के साथ किसी भी कार्य को करने का प्रयास करते हैं, उन्हें जीवन में कभी असफलता को स्वीकार नहीं करना पड़ता। साहस करने वाले ही जीवन में सफल हो पाते हैं, हमें भी साहसी बनना चाहिए। ❑

जरूरी है, जल संकट की समस्या का समाधान

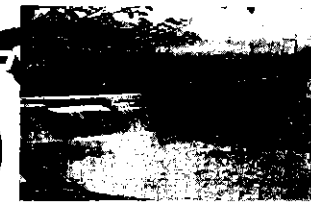

जल संकट वर्तमान समय की एक गंभीर समस्या है। देश के कई राज्यों में वर्षा ऋतु के खतम होते ही जल संकट गहराने लगता है और ग्रीष्म ऋतु आते-आते यह भयावह स्थिति लेने लगता है; क्योंकि हमने अपनी बूँद-बूँद सहेजने वाली पूर्वजों की जल-संस्कृति को तिलांजलि दे दी है। वर्तमान में जल की समस्या दोहरी है। एक तो पर्याप्त मात्रा में पेयजल नहीं है और दूसरा—जो बचा हुआ है, उसका रूप-रंग और स्वाद तेजी से बदल रहा है और इन परिस्थितियों के लिए उत्तरदायी एकमात्र इनसान ही है।

देखा जाए तो जो देश जितना विकसित व समृद्धिशाली हुआ है, उतना ही जल समृद्धि से वंचित है; क्योंकि दुनिया अपने प्राकृतिक संसाधनों के दोहन के साथ विकास व समृद्धि पाने की राह में चल रही है; जबकि उसे प्राकृतिक संसाधनों के पोषण के साथ इस राह पर बढ़ना चाहिए। वर्तमान में पानी की समस्या बारहमासी बन चुकी है और हमारा समाज भी इससे कोई सबक सीखने को तैयार नहीं है। जबकि यही समय है पानी का मूल्य समझने, समझाने का, इसे सहेजने के तौर-तरीके जानने का और अपने पूर्वजों के बताए हुए रास्ते पर चलने का, ताकि बूँद-बूँद पानी बचाने के संकल्प के साथ सभी अपनी धरती के जल को समृद्ध बना सकें।

जल संकट से निपटने का सबसे कारगर तरीका है—वर्षा जल-संचयन। जिस तरह कहावत है कि 'बूँद-बूँद से सागर भरता है', उसी तरह रेनवॉटर हार्वेस्टिंग तकनीक द्वारा बारिश की बूँदों को सहेजने वाली कुछ ऐसी सराहनीय कोशिशें हैं, जिनके द्वारा अनेक व्यक्तियों ने जल संकट की गहराती समस्या पर काबू पाया है।

इसमें पहला उदाहरण राजकोट, गुजरात के 63 वर्षीय स्यामजी जाधव का है, जो कि एक किसान हैं, वे कम पढ़े-लिखे हैं, लेकिन जल-संरक्षण के उनके प्रयास किसी वैज्ञानिक तकनीक से कम नहीं हैं। उनकी सौराष्ट्र लोकमंच संस्था ने साधारण वर्षा जल-संरक्षण संयंत्रों का प्रयोग कर समूचे गुजरात के लगभग 3 लाख कुओं और बोरवेलों को बारिश के पानी से पुनर्जीवित कर दिया है।

इसी तरह राजस्थान में जयपुर के पास लापोड़िया गाँव के लक्ष्मण सिंह ने भी चौका तकनीकी के तहत 10 गुणा 10 फीट के गहरे तालाबों की शृंखला बनाकर खेतों को हरा-भरा कर दिया था। उनके इस कार्य हेतु उन्हें वर्ष 2007 में तत्कालीन राष्ट्रपति प्रतिभा पाटिल द्वारा जल-संग्रहण पुरस्कार प्रदान किया गया था। राजस्थान के अलवर और महाराष्ट्र के रालेगाँव सिद्धि में भी लोगों ने अपने साधनों और श्रम से वर्षा के जल के संग्रह की अनेक छोटी-छोटी योजनाओं को कार्यान्वित करके अपने क्षेत्र की कायापलट कर दी है। उन्होंने जल-संग्रहण के लिए छोटे-छोटे बाँध और सरोवर बनाकर वर्षा के पानी को व्यर्थ बहने से बचाया और उसका संग्रह किया, आज यह क्षेत्र हरी-भरी धरती और लहलहाती फसलों से सराबोर है।

इसी तरह मध्यप्रदेश के दतिया प्रखंड का हमीरपुर गाँव भी जल संसाधन व प्रबंधन तकनीक से वर्षा जल संचित कर जल संकट से मुक्ति पा चुका है। इसके लिए गाँववालों ने एक बड़े से तालाब का निर्माण कर उसमें वर्षा जल संचित कर गाँव के भूजलस्रोतों को इतना जल से भर दिया कि वहाँ पर पानी के लिए अन्य स्रोतों पर निर्भरता खतम हो गई है। हमीरपुर की जल-संरक्षण की सफलता से प्रेरित होकर पड़ोसी गाँवों ने भी वर्षा जल-संचयन तकनीक को लागू करके जल संकट से मुक्ति पा ली है। वर्षा जल-संचयन की इन तकनीकों के सुखद परिणामों से प्रेरित होकर झारखंड सरकार ने भी राजधानी राँची समेत राज्य के कई शहरों में वर्षा जल-संचयन को अनिवार्य कर दिया है।

जल-संरक्षण द्वारा जल को सहेजने के मामले में यदि विदेशी देशों से प्रेरणा ली जाए तो इसमें इजरायल दुनिया का शीर्ष देश है। यह देश जल स्वउद्यमिता यानी जल-संरक्षण के क्षेत्र में आत्मनिर्भरता विकसित करने का सबसे अच्छा उदाहरण है; क्योंकि यहाँ पर जल के स्रोत चाहे वो भूजल हो, सतह पर मौजूद जल हो या दूषित जल, सभी पर सरकार का अधिकार है और जल

को लोगों तक पहुँचाने के लिए निजी व सार्वजनिक, दोनों ही उपक्रमों की मदद ली जाती है। जबकि भारत में स्थिति विपरीत है। यहाँ सिर्फ 10 से 15 फीसदी जलीय स्रोतों पर ही सरकार का आधा-अधूरा नियंत्रण है। बाकी शेष बचे हुए जल के अन्य सभी स्रोत लोगों के उपयोग व दुरुपयोग के लिए खुले हैं। इसके कारण पानी की बरबादी होती है। आँकड़ों के मुताबिक भारत में घरों से निकलने वाले सिर्फ 30 फीसदी दूषित पानी का शोधन किया जाता है और बाकी बचे पानी को नदियों व नहरों में बहा दिया जाता है। इससे प्राकृतिक संसाधन दूषित होते हैं और बीमारियाँ फैलती हैं।

जबकि सिंगापुर जैसे देशों में जल कंपनियाँ दूषित जल का शोधन करके 'न्यूवॉटर' बना रही हैं, जिसे उद्योगों, जनोपयोगी सेवाओं व शहरी निर्माण में इस्तेमाल किया जाता है। इसी तरह हमारे देश में भी दूषित जल को शोधित करके इसे एक व्यापार का रूप दिया जा सकता है, वैसे भी हमारे देश में बोतल-बंद पानी का व्यापार तेजी से फल-फूल रहा है; जबकि ग्रामीण इलाकों व शहरी झुग्गी-झोंपड़ियों में रहने वाले लोगों को साफ पानी उपलब्ध नहीं है। इन लोगों को साफ पानी के लिए समय व धन, दोनों ही खरच करने पड़ते हैं। अत: ट्यूबवेल लगाकर और जल आपूर्ति संयंत्र बनाकर छोटी-छोटी कंपनियाँ ऐसी सुरक्षित व सस्ती जल-वितरण प्रणाली विकसित कर सकती हैं, जिससे जल उपक्रमों और गरीब उपभोक्ताओं दोनों को फायदा पहुँच सके।

जल-संरक्षण के मामले में जापान ने भी अपने देश में सफल प्रयोग किए हैं। सभी जानते हैं कि टॉयलेट फ्लश करने में पानी की सबसे अधिक बरबादी होती है। फ्लश टैंक के आकार के आधार पर प्रत्येक फ्लश के साथ पाँच से सात लीटर पानी बरबाद होता है। इसे रोकने के लिए जापान ने एक नया तरीका अपनाया। वहाँ की एक कंपनी ने शौचालय के फ्लश टैंक के ऊपर ही हाथ धोने के लिए वॉश बेसिन लगवा दिए। इससे हाथ धोने के बाद यह पानी फ्लश टैंक में चला जाता है और टॉयलेट फ्लश करने के लिए इसका इस्तेमाल होता है।

इसी तरह अमेरिका में भी जल-संरक्षण से संबंधित कुछ प्रयोग किए गए। वहाँ पिछले कई वर्षों से अमेरिकी राज्य कैलिफोर्निया सूखे की चपेट में है। इस समस्या से निजात पाने के लिए वहाँ के स्थानीय निकाय ने टॉयलेट टू टैप नाम से वेस्ट वाटर मैनेजमेंट की एक परियोजना शुरू की। परियोजना के तहत लोगों के घरों से निकलने वाले दूषित जल का सौ फीसदी शोधन होता है। इस तकनीक में तीन प्रक्रियाओं के जरिए दूषित जल को पीने लायक पानी में बदला जाता है। यह संयंत्र सीवेज से रोजाना 37 करोड़ लीटर शुद्ध जल बना रहा है और यह पानी शुद्धता के अंतरराष्ट्रीय मानकों पर खरा उतरता है।

वर्तमान में हमारा देश भी जल संकट के उस दौर से गुजर रहा है, जिसे हमारे से पहले की किसी पीढ़ी ने कभी नहीं देखा। अत: जरूरत इस बात की है कि देश में जल-संरक्षण व जल-शुद्धिकरण के विविध प्रयास किए जाएँ; क्योंकि इसके अलावा हमारे पास अन्य कोई विकल्प नहीं है। ❑

गांधी जी उन दिनों अफ्रीका में थे। उनके साथ जर्मनी के निवासी कैनलबैक रहते थे। दोनों में गहरी मित्रता थी। वहाँ के पठानों को गांधी जी की नीति पसंद नहीं आई तो वे नाराज हो गए। कैनलबैक को लगा कि वे गांधी जी पर हमला कर सकते हैं तो उन्होंने गांधी जी की सुरक्षा हेतु एक रिवाल्वर की व्यवस्था की। उस रिवाल्वर को वे अपने कोट में छिपाकर चलते। गांधी जी को पता चला तो उन्होंने कैनलबैक से इसका कारण पूछा तो वे बोले—"कुछ पठान आपसे रुष्ट हैं, कहीं आप पर आक्रमण न कर दें।" गांधी जी बोले—"अब तक मेरी रक्षा का दायित्व ईश्वर का था, उसे छीनने वाले आप कौन होते हैं।" गांधी जी की ईश्वरनिष्ठा देखकर कैनलबैक मुग्ध हो उठे और उन्होंने अपना रिवाल्वर फेंक दिया।

वैराग्य के अभ्यास से सधता है मन

मनुष्य का मन बहुत चंचल होता है, उसका एक जगह पर टिक पाना सरल नहीं होता, लेकिन चंचल स्वभाव के कारण मन की शक्तियाँ भी बिखरी रहती हैं और शक्तिशाली होते हुए भी मन अपनी शक्तियों का उपयोग नहीं कर पाता। कुछ मनुष्यों की स्थिति तो यहाँ तक हो जाती है कि उनका मन कमजोर प्रतीत होता है और रुग्ण भी हो जाता है। जबकि यदि मन का विकास किया जाए, उसकी शक्तियों को एकत्रित करके उनका सदुपयोग किया जाए, तो यही मन अपरिमित संभावनाओं के द्वार भी खोल देता है।

हालाँकि मन को नियंत्रित करना सरल कार्य नहीं होता, लेकिन यदि हम मन के रंग-रूप, उसके लक्षण, चरित्र और उसके कार्य करने के तौर-तरीकों को जान लें, तो हम उसे नियंत्रण में रख सकते हैं। जिस तरह घोड़े की आदत को जाने बिना उसे साधना संभव नहीं होता, उसी तरह मन के बारे में जाने बिना उसे वश में करना संभव नहीं होता। हालाँकि हर व्यक्ति का मन अलग-अलग होता है, इसलिए उसे साधने के तौर-तरीके भी अलग-अलग होंगे। फिर भी मन से संबंधित कुछ ऐसी सामान्य बातें हैं, जिन्हें जानना सबके लिए जरूरी है।

गौतम बुद्ध ने एक बार कहा था—"मन समस्त इंद्रियों की शक्तियों में उत्कृष्ट है। सभी सापेक्ष विचार मन में ही पैदा होते हैं। मन सभी संवेदनाओं का अग्रगामी है। इस भौतिक विश्व के समस्त तत्त्वों की अपेक्षा मन सबसे सूक्ष्म है। समस्त विषय और चेतना मन में ही उत्पन्न होते हैं। यदि कोई शुद्ध मन से बोलता या काम करता है तो आनंद उसकी छाया के समान उसका अनुसरण करता है।"

हमारा मन न तो अच्छा होता है और न ही बुरा। वह पानी की तरह होता है। उसमें जैसा रंग डाल दिया जाए, वैसा ही वह हो जाता है। मनुष्य इसमें अपने विचारों, इच्छाओं, कल्पनाओं, अनुभव और संकल्प-विकल्प के जितने और जैसे रंग डालता जाएगा, वह वैसा ही बनता चला जाएगा। जब हम मन के बिना हो ही नहीं सकते, तो वह अच्छा और बुरा कैसे हो जाएगा? अतः हम उसे जैसा बनाएँगे, वह वैसा ही हो जाएगा।

यदि घड़ा सुडौल नहीं बन पाया, तो इसमें घड़े का क्या दोष? यह तो कुम्हार का दोष है कि उसने घड़े को ऐसा गढ़ा। इसी तरह मन हमारा गीली मिट्टी के लौंदे की तरह होता है। व्यक्ति उससे क्या बनाना चाहता है, यह उस पर निर्भर करता है। फिर भी मन की प्रकृति—हठी, जिद्दी और दुराग्रही है, लेकिन यह भी तब है, जब हम मन की बात मानें, मन के अनुसार चलें। अन्यथा मन व्यक्ति का बहुत अच्छा सारथी भी है, यानी वह किसी भी आज्ञा का बहुत अच्छे से पालन करने वाला भी है। व्यक्ति का मन एक दर्पण की तरह भी होता है यानी उसके सामने जैसा भी कुछ आता है, उसी का प्रतिबिंब मन दिखाता है।

हमारे भारतीय दर्शन में मन को अलग-अलग तरीके से परिभाषित किया गया है। हमारे यहाँ मन की उपमा वायु और घोड़े से दी गई है। या तो वह वायु की तरह लगातार प्रवाहित होने वाला तत्त्व है या फिर घोड़े की तरह उद्दंड और जिद्दी स्वभाव का है। श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण जब संशयग्रस्त अर्जुन को यह समझा रहे थे कि योग की चरम स्थिति को कैसे पाया जा सकता है, तब अर्जुन हताश मन से श्रीकृष्ण से कहते हैं कि—

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्॥

—गीता 6/34

अर्थात—हे श्रीकृष्ण! यह मन बड़ा चंचल, प्रमथन स्वभाववाला, बड़ा दृढ़ और बलवान है। इसलिए इसको वश में करना मैं वायु को रोकने की भाँति अत्यंत दुष्कर मानता हूँ।

तब अर्जुन के इन हताशा भरे शब्दों को सुनने के बाद श्रीकृष्ण अर्जुन की बात को काटते नहीं हैं, बल्कि स्वीकारते हैं। इसलिए वे अर्जुन से कहते हैं—

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते॥

—गीता 6/35

अर्थात—हे महाबाहो! निस्संदेह मन चंचल और कठिनता से वश में होने वाला है, परंतु हे कुंतीपुत्र अर्जुन! यह अभ्यास और वैराग्य से वश में होता है।

इस तरह से भगवद्गीता में मन को वश में करने के ये दो सूत्र बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं—(1) अभ्यास और (2) वैराग्य। अभ्यास यानी पुनः प्रयास करना, बार-बार प्रक्रियाओं को दोहराना और वैराग्य यानी रागरहित होना। जब तक व्यक्ति के अंदर राग है यानी आसक्ति है, तब तक वैराग्य संभव नहीं और जब तक वैराग्य नहीं है, तब तक मन की आसक्तियाँ भी नहीं जातीं। मन की स्थिरता के लिए वैराग्य का होना जरूरी है, अन्यथा मन किसी भी तरह की आसक्ति के कारण चंचल हो जाएगा। इसी तरह अभ्यास वह प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से किसी भी कार्य को सीखा जा सकता है और उसमें कुशलता प्राप्त की जा सकती है। इस तरह वैराग्य यानी रागरहित होने का भी अभ्यास किया जा सकता है।

ऐसा नहीं कि हर चीज से वैराग्य हो, तभी मन स्थिर व शांत होगा, लेकिन शुरुआत तो किन्हीं चीजों से करनी होगी। कुछ बातें व्यक्ति को बहुत परेशान करती हैं, चिंता में डालती हैं, क्योंकि उन बातों से संबंधित व्यक्तियों व परिस्थितियों से बहुत आसक्ति होती है। यदि थोड़ी देर के लिए ही सही, पर वहाँ से ध्यान हटा दिया जाए, तो उनसे संबंधित चिंता व तनाव भी कम हो जाएगा। किसी भी चीज से ध्यान हटाना ही अल्प वैराग्य है, यानी थोड़ी देर के लिए रागरहित होना है। इस अभ्यास के द्वारा हम थोड़ी देर के लिए अपने मन को रागरहित कर सकते हैं। जब यह अभ्यास की प्रक्रिया बढ़ जाती है, तो मन में ज्यादा वैराग्य की भावना आ जाती है।

मन में वैराग्य होने पर ही व्यक्ति सही अर्थों में संसार-सागर को पार कर सकता है; क्योंकि वैराग्य होने पर व्यक्ति समुद्र में तैरने वाली नाव की तरह हो जाता है, जो जल में तो रहती है, लेकिन जल उसमें प्रवेश नहीं करता और वह नाव तैरते हुए संसार-सागर को पार कर जाती है; जबकि आसक्ति होने पर व्यक्ति की मन रूपी नाव न तो स्थिर होती है और न ही तैरते हुए आगे बढ़ पाती है और धीरे-धीरे उसमें आसक्ति रूपी जल इतनी मात्रा में प्रवेश कर जाता है कि वह उससे उबर नहीं पाती, बल्कि वहीं डूब जाती है।

इसलिए यदि मन को स्थिर, शांत, सशक्त व सुदृढ़ बनाना है, तो मन की कमजोरियों को पहचानना होगा, सघन आसक्तियों को दूर करना होगा और मन में वैराग्य का प्रकाश जगाना होगा, इसके लिए संन्यासी या वैरागी बनने की जरूरत नहीं, बल्कि वैराग्य का अभ्यास करने की जरूरत है और वह भी संसार में रहकर। यदि व्यक्ति को तैरना सीखना है तो उसे पानी में उतरकर ही तैरना सीखना होगा, पानी से बाहर रहकर तैरना नहीं सीखा जा सकता, **उसी तरह वैराग्य का अभ्यास भी संसार में रहकर ही किया जाता है,** संसार से विलग होकर कोई वैराग्य का अभ्यास नहीं कर सकता। ❑

दो मित्र थे। एक दिन भर मजदूरी करता तो दूसरा केवल दो घंटे परिश्रम करता था। पहला व्यक्ति तो बहुत ही क्षीणकाय हो गया, परंतु दूसरा नगर का प्रसिद्ध पहलवान बन गया। एक दिन दोनों की मुलाकात हुई तो पहलवान ने अपने मित्र से पूछा—"तुम दिन भर मेहनत करते हो, तो भी तुम्हारा शरीर इतना दुर्बल क्यों है?" वह मित्र इस प्रश्न का कोई उत्तर न दे सका। पहलवान ने फिर पूछा—"जब तुम मेहनत करते हो, तो तुम्हारा ध्यान किधर रहता है।" वह बोला—"पैसे कमाने में।" पहलवान ने कहा—"मित्र! यही कारण है कि तुम कृषकाय होते जा रहे हो। जब मैं मेहनत करता हूँ तो मेरा ध्यान शक्ति-अर्जन में लगा रहता है। जहाँ हमारा ध्यान होता है, वहीं हमारी शक्ति केंद्रित हो पाती है।"

मनोभूमि बदले तो जीवन भी सँवरे

घातक बीमारियों की जड़ें मनुष्य के शरीर में नहीं, वरन मन की गहराइयों में, भावनाओं में अंदर तक धँसी होती हैं। इस तथ्य को उजागर करते हुए 'एनाटॉमी ऑफ एन इलनेस' नामक पुस्तक में कई उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं। उनके अनुसार सी० डब्ल्यू० टेलर नामक एक चिकित्सक को प्राणांतक स्थिति तक पहुँचा हुआ कैंसर रोग था। अस्पताल की रुग्णशय्या पर पड़े हुए वह सदा इस प्रश्न पर विचार करता रहता था कि कीमोथेरेपी एवं रेडियोथेरेपी के कारण नित्य पल-पल नारकीय कष्ट इसलिए सहन किए जाएँ; क्योंकि कुछेक महीने, घंटे या क्षणों की आयु बढ़ने की संभावना है या फिर जो क्षण उपलब्ध हैं उन्हें तब तक हास्य, विनोद, संगीत, प्रार्थना आदि के माध्यम से बिताया जाए? अपनी इस जिज्ञासा का समाधान खोजते हुए उसके हाथ में एक दिन 'मेडिकल केअर' पत्रिका में प्रकाशित 'डायमेंशन्स ऑफ पेशेन्ट्स एटिट्यूड रिगार्डिंग डॉक्टर्स एंड मेडिकल सर्विसेस' नामक डॉ० जे० ई० वेर द्वारा लिखित लेख आ गया।

इस लेख में बताया गया था कि सुप्रसिद्ध चिकित्सक डॉ० ओ० कार्ल ने एक अनुसंधान पत्र प्रस्तुत किया था। इसमें कहा गया था कि भावनात्मक तनाव, कैंसर का एक प्रमुख कारण है, जो आधुनिक इन्टेसिव केयर यूनिट के वातावरण में सहज रूप से उपलब्ध है। एक अन्य अनुसंधान पत्र में जिसे डॉ० एकेन्टर ने प्रस्तुत किया था कहा गया था कि विषाद की मनोदशा शारीरिक प्रतिरक्षा प्रणाली को कुप्रभावित करती है। ऐसी दशा में यदि रोगी की मनोदशा विधेयात्मक दृष्टिकोण अपना लेती है तो शरीर की प्रतिरक्षात्मक प्रणाली विकसित होने लगती है। वैज्ञानिक शोधों के अतिरिक्त इस संबंध में अन्य मूर्द्धन्य लेखकों, मनीषियों यथा—टॉल्स्टॉय, दोस्तोवस्की से लेकर मोलियर, बर्नार्ड शॉ आदि ने जो भिन्न-भिन्न मत व्यक्त किए थे, उनका उल्लेख किया गया था। डॉ० टेलर उन्हीं बातों पर विचार करता रहा।

अंततः उसने रुग्णशय्या को छोड़कर अपने को विधेयात्मक मनोदशा प्रदान करना शुरू किया और साथ ही अपना पुराना चिकित्सकीय अनुभव अस्पताल के रोगियों में बाँटना आरंभ कर दिया। उसने कहा कि अब जो कुछ भी मैं कर रहा हूँ, वह अपने विज्ञान क्षेत्र से अर्जित ज्ञान के आधार पर नहीं, वरन ऐसे क्षेत्र के ज्ञान के आधार पर कर रहा हूँ, जो हमारे पूर्ववर्ती धर्मगुरुओं, मनीषियों, मनोविज्ञानियों आदि ने प्रदान किया था। उसके आधार पर हमें अपने रोगियों की मनोदशा को उन्नत करते रहने का सदैव प्रयत्न करते रहना चाहिए और इसमें हमें शीघ्र ही आशातीत सफलता भी प्राप्त होनी चाहिए।

गते शोको न कर्त्तव्यो भविष्यं नैव चिन्तयेत्।
वर्तमानेन कालेन वर्तयन्ति विचक्षणाः॥

—चाणक्य नीतिशास्त्र, 13/32

अर्थात जो बीत चुका, उसका शोक नहीं करना चाहिए और न ही भविष्य के प्रति चिंतित होना चाहिए। समझदार लोग वर्तमान पर ही ध्यान देते हैं।

डॉ० टेलर को अपने इन प्रयासों में सफलता मिली और वह कैंसर से मुक्त हो गया। बाद में उसने अपना अनुभव प्रकाशित करते हुए यह लिखा—अपने रोगियों को अब यह बताने में मैं बिलकुल ही नहीं हिचकिचाता कि आपकी जो घोर निराशा की समस्या है, वही आपकी बीमारी की मूल जड़ है। यदि आप अपनी मनोभूमि को सकारात्मक बना लेंगे तो आपका शरीर स्वयं ही कैंसर से लड़ने की क्षमता को विकसित कर लेता है। यदि दृष्टिकोण सकारात्मक हो तो मनुष्य न केवल बीमारी को परास्त करता है, वरन एक सुखी जीवन भी जी सकता है। आज सभी व्यक्तियों को इसी सूत्र का अनुशीलन करने की आवश्यकता है। ❑

चेतना की शिखर यात्रा —188

कुंभ पर्व का रहस्य

विगत अंक में आप सन् 1974 में हरिद्वार में आयोजित हुए कुंभ पर्व के विषय में पढ़ रहे थे। देवताओं और दानवों द्वारा मिलकर सागर मथने और उसमें से चौदह रत्न निकलने, असंख्य विभूतियाँ प्रकट होने तथा आपदाओं के आने के प्रसंग प्रसिद्ध हैं। इसी क्रम में देवासुर संग्राम की भूमिका भी बनी थी। हरिद्वार में आयोजित कुंभ के समय में कार्यकर्त्ताओं के द्वारा यह पूछने पर कि क्या गायत्री परिवार को भी कुंभ में जाकर अपना डेरा लगाने की आवश्यकता होनी चाहिए, परमपूज्य गुरुदेव ने उत्तर दिया—हम लोगों का उद्देश्य धर्मभावना का प्रचार करना है। हमारी तैयारी भी आंतरिक एवं व्यक्तित्व के परिष्कार के आधार पर होनी चाहिए। उस आधार पर किया गया प्रचार सदा स्थायी एवं कल्याणकारी होता। आइए पढ़ते हैं इसके आगे का विवरण.....

दिल्ली से 'टाइम्स आफ इंडिया' पत्र समूह के एक पत्रकार हरिदत्त शर्मा घूमते-फिरते उस दिन करपात्री जी के पास भी पहुँचे। उन्होंने अपना परिचय दिया तो स्वामी जी ने कहा कि यह धर्म अवसर है। धर्म को राजनीति से अलग नहीं किया जा सकता, पर इस समय केवल धर्म की ही चर्चा करें। राजनीति पर किसी और समय बात होगी। स्वामी जी का वह गंगावास श्रीविद्या के लिए ही समर्पित था। इसलिए धर्म-अध्यात्म के अलावा अन्य विषय पर पाबंदी स्वाभाविक ही थी। हरिदत्त शर्मा ने स्वामी जी से कहा कि आप स्वयं धर्मपुरुष हैं। राजनीति को धर्मसम्मत बनाने के लिए आपने रामराज्य परिषद् का गठन किया है। यहाँ के शिविर में राजनीतिक चर्चा पर प्रतिबंध क्या उपयुक्त है? स्वामी जी ने कहा कि प्रतिबंध कोई कलिवर्ज्य प्रकरण की तरह नहीं है। राजनीति के सिद्धांत पक्ष पर चर्चा किसी भी समय की जा सकती है, यहाँ सिर्फ धार्मिक चर्चा ही। उन पत्रकार ने विषय को यहीं विराम दिया और पूछा कि इस समय कौन-सा धार्मिक आंदोलन है, जो समाज का मंथन करने में लगा हुआ है और वह मंथन 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय' के परिणाम लाएगा।

करपात्री जी कुछ क्षण चुप रहे। फिर वे बोले—"पंडित श्रीराम शर्मा का गायत्री परिवार आंदोलन। मैं उनकी कार्यपद्धति और विचारधारा से सहमत नहीं हूँ, पर उनका प्रयास अधिक-से-अधिक लोगों के कल्याण के लिए है।" इस अभिव्यक्ति के समय कुछ ऐसे विद्वान भी वहाँ मौजूद थे, जिन्होंने करपात्री जी को गायत्री परिवार की मुखर आलोचना करते हुए देखा-सुना था। स्वामी जी का यह अभिमत सुनकर वे चौंक उठे और उनकी तरफ हैरत से देखने लगे। स्वामी जी ने उन विद्वानों के चेहरे देखे और कहा—"मैं आज भी सहमत नहीं हूँ। नैयायिक (न्याय दर्शन के विद्वान) और सांख्यों (सांख्य दर्शन के विद्वान) में आज भी विवाद है, लेकिन दोनों वैदिक मार्ग के ही प्रतिनिधि हैं। श्रीराम से मेरा विरोध द्वेष के कारण नहीं है। वह विचारगत है।" कहते-कहते स्वामी जी कुछ रुके और फिर बोले—"इस विषय को विस्तार देने से कोई लाभ नहीं है। संक्षेप में यों समझें कि भगीरथ जब गंगा को पृथ्वी पर लाने लगे तो देवों और कई ऋषियों ने इसकी आलोचना की थी। उनका अपना मत था। पर गंगा जब पृथ्वी पर आईं तो उनसे करोड़ों लोगों का कल्याण ही हुआ।"

वहाँ उपस्थित विद्वत् मंडली को करपात्री जी की यह उक्ति अप्रिय लगी थी। स्वामी जी का साक्षात्कार लेने आए हरिदत्त शर्मा ने दूसरे विषयों पर भी सवाल किए। स्वामी जी ने उनका यथोचित उत्तर दिया और एक प्रसंग में यह भी कहा कि अब संन्यास की अपेक्षा वानप्रस्थ आश्रम की प्रतिष्ठा होनी चाहिए। समाज में वानप्रस्थ

सिद्ध हो जाएगा तो संन्यास की सार्थकता भी सिद्ध होने लगेगी। अभी संन्यास कृष्णपक्ष की अष्टमी के चंद्रमा की भाँति है।

स्नान पर विवाद

13, अप्रैल को वैशाखी का दिन। हरिद्वार कुंभ का प्रमुख स्नान पर्व। हर की पैड़ी पर दर्शनार्थियों का हुजूम उमड़ रहा था। वहाँ से सप्त सरोवर और उसके आगे तक तथा इधर दशाश्वमेध घाट से दक्ष प्रजापति के मंदिर तक गंगा का किनारा भी स्नानार्थियों से भरा हुआ था। साधु-संतों और अखाड़ों का स्नान ब्राह्ममुहूर्त में था। प्रमुख अखाड़े, उनके निशान और आश्रमों के महंत स्नान कर चुके थे। सुबह पहले स्नान के सवाल पर थोड़ी-सी झड़प हुई थी। महानिर्वाणी अखाड़े के साधुओं ने दशनामी साधुओं से पहले स्नान करना चाहा। दशनामी साधु पहले जाना चाहते थे। यों कुंभ से पहले ही अखाड़ा परिषद् ने सभी अखाड़ों के स्नान का क्रम तय कर दिया था, फिर भी कुछ विवाद हुआ ही। पुलिस और सामाजिक संगठनों के बीच-बचाव करने पर संघर्ष की स्थिति टली।

यह विवाद चल ही रहा था कि काशी मठ के शंकराचार्य स्वामी विद्यानंद गिरि अपने दल-बल के साथ हर की पैड़ी की ओर चले। नियम है कि साधु-संन्यासियों के स्नान के समय सूचीबद्ध संन्यासियों के अलावा कोई और स्नान नहीं कर सकता। काशी के शंकराचार्य का नाम सूचीबद्ध संन्यासियों में नहीं था। उन्हें दूसरे संन्यासियों ने रोका। मठ के साधुओं ने तर्क दिया कि शंकराचार्य की परंपरा अत्यंत पुरानी है। उनका नाम संन्यासियों की सूची में होना चाहिए था। सूची में नहीं है तो उसे सम्मिलित करना चाहिए। विद्यानंद गिरि को रोक रहे साधुओं के दल में से एक ने कहा कि काशी मठ की मान्यता नहीं है। प्रतिपक्ष ने कहा वह बदरीनाथ मठ का अवांतर स्थान है। बदरिकाश्रम जब उजड़ गया था तो वहाँ के आचार्य यहीं से धर्मानुशासन चलाते थे।

साधुओं ने कहा यह शास्त्रार्थ का विषय है। विद्वज्जन इस बारें में कोई व्यवस्था दे देंगे तो काशी वालों को साधुओं की जमात में आने दिया जाएगा। विवाद कहीं खतम होने का नाम ही नहीं ले रहा था। इस बीच मठ के एक संन्यासी ने दौड़कर गंगा में छलाँग लगा दी। दूसरे संन्यासी चिल्ला उठे कि हो गया स्नान। विद्वत्परिषद् अब जो चाहे व्यवस्था दे। अगले बारह वर्ष के लिए तो निपटारा हो ही गया। उधर दूसरे दल के साधु दौड़े और वे भी गंगा में कूदे। उन्होंने स्नान कर रहे संन्यासी को बाहर निकाला। स्नान के समय वह अर्घ्य नहीं चढ़ा पाया था, इसलिए उसे मान्यता नहीं दी गई। शास्त्र की भाषा में बिना अर्घ्य दिए हुए स्नान को खग स्नान कहते हैं।

मठ और दूसरे संप्रदायों के संन्यासियों में इस घटना के बाद काफी देर विवाद चला। गनीमत थी कि मार-पीट की नौबत नहीं आई। वह स्थिति बन ही रही थी कि पीछे किसी और संन्यासी संघ ने काशी के शंकर मठ से आने का दावा किया। उन्होंने पहले स्नान का हठ कर रहे संघ को फर्जी बताया और उसे खदेड़ने के लिए हल्ला मचाने लगे। इस बीच महानिर्वाणी और दशनामी साधुओं का विवाद निपट गया था। पहले से तैयार की गई सूची के अनुसार ही अखाड़ों ने क्रम से स्नान किया। क्रम पहले की तरह आरंभ हो जाने के बाद शांति हो गई। दूर खड़े गृहस्थ और सूची में शामिल नहीं होने वाले नव संन्यासी साधुओं का स्नान निपट जाने के बाद अपनी बारी का इंतजार करते रहे।

साधुओं ने सुबह सात बजे तक स्नान कर लिया था। वहाँ जमा लोग अपनी बारी का इंतजार करने के अलावा साधु-संतों के दर्शन के लिए भी खड़े रहते थे। गंगा किनारे आते-जाते साधुओं की शोभायात्रा और शाहियों (साधु-संतों और अखाड़ों की शोभायात्रा) के दर्शन करना पुण्य समझा जाता है। साधुओं के उस मार्ग से निकल जाने के बाद सड़क की धूल-मिट्टी उठाने के लिए लोग टूट पड़ते थे। इसे वे महात्माओं के चरणों की धूल कहते और अपने माथे पर लगाते। कुछ महिलाएँ यह चरणधूलि थैलियों में रखती हुई दिखाई देतीं, जिन्हें वे इसी काम के लिए लाती थीं। कुछ अपनी साड़ी के पल्लू में बाँधकर रख लेतीं। कुछ लोग साधुओं के उस रेले में शामिल हो जाते और उनके साथ ही स्नान कर लेते। इस घुसपैठ को वे चतुराई समझते और इस तरह के स्नान को अपना सौभाग्य समझते थे। इस तरह वैशाखी का वह स्नान पर्व निपट गया।

शांतिकुंज में अलग ही तरह का पर्व स्नान हुआ। लोग सुबह उठे। साधकों में से कई ने गंगा स्नान किया। कुछ ने यह माना कि शांतिकुंज में सभी तीर्थों और पुण्य सलिलाओं का वास है। इस मान्यता से प्रेरित होकर उन्होंने शांतिकुंज में ही स्नान किया। कुछ लोग हर की पैड़ी पर भी गए। इन सबसे अलग और विलक्षण स्नान राजस्थान के एक साधक बिहारीलाल का था। उनकी उम्र साठ वर्ष पार कर गई थी। शरीर स्वस्थ था, पर

वृद्धावस्था के साथ जो समस्याएँ जुड़ जाती हैं, वे उनके साथ भी थीं। उन्हें नींद कम ही आती थी। टुकड़ों-टुकड़ों में वे तीन-चार घंटे सोते थे। कमर सीधी करके चलने में उन्हें थोड़ी परेशानी होती थी और उनके दाँत भी गिर गए थे। दाँत गिर जाने के बाद उन्होंने नई बत्तीसी नहीं लगवाई थी। कहते थे कि भगवान ने जो चीज वापस ले ली, उसे अपनी ओर से क्या बसाना। हाँ, उनकी नजरें तेज थीं। कहते हैं कि जिसके दाँत गिर जाते हैं, उसकी नजरें भी कमजोर हो जाती हैं। बिहारीलाल जी के साथ यह बात नहीं थी। वे किसी स्वस्थ युवा व्यक्ति की तरह दूर की चीज देख और पहचान सकते थे।

बिहारीलाल जी ने वानप्रस्थ ले लिया था और राजस्थान के अपने क्षेत्र में ही काम कर रहे थे। यों वे शांतिकुंज आते-जाते रहते थे, लेकिन इस बार कुंभ के लिए खासतौर पर आए थे। उनकी तमन्ना थी कि कुंभ पर किसी सच्चे और अधिकारी साधु के दर्शन हों। गुरुदेव से भी उन्होंने अपनी इच्छा व्यक्त की थी। इच्छा जताने के साथ अनुरोध भी किया था कि वे आकांक्षा पूरी करें। गुरुदेव उनकी बात सुनकर हँसते हुए चुप रह गए थे। बिहारीलाल जी ने मान लिया था कि गुरुदेव ने आश्वस्त कर दिया है। फिर कुछ घटना भी इसी तरह की हुई। वैशाखी के स्नान पर्व के दिन सुबह के तीन बजे बिहारीलाल जी अपने कमरे में सो रहे थे। थोड़ी देर पहले ही आँख लगी थी। उन्हें लगा कि गुरुदेव बुला रहे हैं।

बिस्तर के पास से ही उनकी आवाज आई, जैसे गुरुदेव जगा रहे हों। आँख खुली तो देखा वे सामने खड़े हैं। कह रहे हैं कि तुम्हें कुंभ पर कुछ अनुभव करना है न! चलो उठो। स्नान कर लो और आओ मेरे साथ। गुरुदेव को सिरहाने खड़ा देख बिहारीलाल जी तुरंत उठकर खड़े हो गए। उठते ही उनके चरण छुए। कहा—"आप विराजिए गुरुदेव! मैं अभी तैयार होता हूँ।"

गुरुदेव ने कहा—"मैं यहाँ बैठने नहीं आया हूँ। तुम स्नान कर तैयार हो जाओ और सप्त सरोवर के पुश्ते पर मिलो। मैं वहीं तुम्हारा इंतजार करूँगा।"

बिहारीलाल ने कहा—"आप वहाँ इंतजार क्यों करते हैं? मैं वहीं स्नान कर लूँगा।" गुरुदेव ने इस पर समझाया कि यहीं स्नान कर लो। वहाँ गंगा किनारे अँधेरा होगा। अँधेरे में विषैले जीव-जंतुओं का डर रहता है।

उस दिन वैशाख के कृष्ण पक्ष की सप्तमी तिथि थी। आसमान में तारे चमक रहे थे। चंद्रमा को अस्त हुए काफी समय बीत गया था। बिहारीलाल जी गुरुदेव की आज्ञा मानते हुए स्नान के लिए चल दिए। उन्हें रह-रहकर आश्चर्य हो रहा था कि गुरुदेव इस समय यहाँ, उनके कमरे में कैसे आ गए? कभी किसी से सुना नहीं कि गुरुदेव इतनी सुबह किसी साधक के कमरे में गए हों। सुबह जगाने और कहीं ले जाने की बात होती तो संदेश पहुँचाना ही काफी था। इन विचारों में डूबते-तैरते बिहारीलाल जी नित्यकर्मों से निवृत्त हुए। उस सुबह उन्होंने शांतिकुंज में नियमित गायत्री जप नहीं किया। गुरुदेव सप्त सरोवर में प्रतीक्षा कर रहे होंगे, यह विचार ही उन्हें व्यग्र किए दे रहा था। उन्होंने स्नान के बाद गायत्री माता की छवि के सामने दीपक जलाया, प्रणाम किया और मन-ही-मन गायत्री का जप करते हुए सप्त सरोवर की ओर चल दिए। (क्रमशः)

लालबहादुर शास्त्री जी से उनके मित्र ने पूछा—"आप सदैव प्रशंसा से दूर रहा करते हैं, स्वागत-सत्कार के कार्यक्रमों में भी भागीदार नहीं होते, ऐसा क्यों?" शास्त्री जी हँसकर बोले—"एक बार लाला लाजपतराय ने मुझसे कहा था—"लालबहादुर! ताजमहल बनाने में दो तरह के पत्थरों का उपयोग हुआ है। एक तो संगमरमर, जिसका उपयोग गुंबद बनाने में और यत्र-तत्र किया गया है। दूसरा साधारण पत्थर, जिसका उपयोग ताजमहल की नींव बनाने में किया गया है। संगमरमर सब देखते हैं, पर नींव के पत्थर की ओर किसी का ध्यान नहीं जाता। हमें भी उसी की तरह बनना चाहिए।" तब से उनकी इसी सीख का जीवन भर अनुकरण करता रहा हूँ और सदा नींव का पत्थर बनने के प्रयत्न में लगा रहा हूँ।

तनावमुक्ति के सूत्र

सभी जानते हैं कि आज तनाव हमारी जिंदगी का एक अहम हिस्सा बन चुका है। तनाव के सकारात्मक व नकारात्मक स्वरूप से भी हम परिचित हैं, जैसे—तनाव जब तक हमारी कार्यकुशलता को बढ़ाने में सहायक है, हमारे विकास में सहायक है, तब तक यह हमारे लिए सकारात्मक है और जब तनाव के कारण हमारा जीवन बुरी तरह से प्रभावित होने लगता है तो यही तनाव हमारे लिए नकारात्मक बन जाता है।

व्यक्ति को सफलता मिलने से पूर्व भी तनाव होता है, लेकिन यह सकारात्मक होता है और असफल होने का भी उसे तनाव होता है, जो कि नकारात्मक होता है। तनाव चाहे सकारात्मक रूप में हो या नकारात्मक स्वरूप में, हम उसके प्रति क्या प्रतिक्रिया करते हैं—यह महत्त्वपूर्ण होता है और इसी प्रतिक्रिया के फलस्वरूप तनाव का हमारे जीवन पर प्रभाव पड़ता है।

सर्वेक्षण यह बताते हैं कि हर किसी के मन में कम या ज्यादा मात्रा में कुछ-न-कुछ तनाव है। किसका तनाव कितना है, इससे ज्यादा महत्त्वपूर्ण यह है कि वह अपने तनाव का सामना किस तरह करता है। ऐसा आकलन है कि देश की आठ से दस फीसदी आबादी तनाव, चिंता, अवसाद, सिजोफ्रेनिया या नशे की वजह से किसी-न-किसी तरह के मनोरोग से पीड़ित है। लेकिन भारत में प्रति लाख आबादी पर सिर्फ 0.3 मनोचिकित्सक हैं; जबकि प्रति लाख आबादी पर अन्य देशों, जैसे—चीन में 1.7, आस्ट्रेलिया में 9.16, रूस में 11.06, अमेरिका में 12.4, कनाडा में 13.42, फ्रांस में 14.12, ब्रिटेन में 14.63, स्वीडन में 18.31 और नॉर्वे में 29.69 मनोचिकित्सक हैं।

मनोचिकित्सकों का कहना है—तनाव को जीने वाले अधिकतर लोग डॉक्टरों के पास तभी जाते हैं, जब उन्हें यह लगता है कि तनाव के कारण उनके हालात अब पूरी तरह से बिगड़ गए हैं। जिस तरह से कोई भी व्यक्ति अपनी कार के ब्रेक के टूट जाने पर ही उसे नहीं सुधरवाता, बल्कि बीच-बीच में कुछ भी खामियाँ होने पर उसे सुधरवाता रहता है, इसी तरह से व्यक्ति को भी अपना मानसिक स्वास्थ्य पूरी तरह से खराब होने की स्थिति का इंतजार नहीं करना चाहिए, बल्कि किसी भी तरह का तनाव यदि मन में है, तो उसे दूर करने का प्रयास करना चाहिए या मनोचिकित्सकों से परामर्श लेना चाहिए।

आज अधिकतर लोग तनाव में जीते हैं, पर उन्हें इसका आभास नहीं होता। बीएमजे (ब्रिटिश मेडिकल जर्नल) की एक रिपोर्ट के अनुसार—तनाव हमारे काम-काज को बहुत प्रभावित करता है और काम-काज से संबंधित बीमारियों में से एक-तिहाई बीमारियों का कारण तनाव ही होता है। केवल इतना ही नहीं, तनावजनित रोगों के कारण हम आधे से अधिक अपना कामकाजी वक्त भी यों ही गँवा देते हैं।

मनोचिकित्सकों के अनुसार—तनाव आमतौर पर लक्षणों से ही जाहिर होता है, जैसे—अपने कार्यों की गतिविधियों में अरुचि दिखना, कार्य के दौरान जल्दी थक जाना, एकाग्रता की कमी होना, भूख में अनियमितता होना, अनिद्रा व चिड़चिड़ापन होना आदि। लेकिन तनाव का कोई शारीरिक आधार नहीं होता, जैसे—तनाव होने पर सिरदर्द या दूसरी तरह का मानसिक दर्द हो, यह जरूरी नहीं होता। लेकिन एक सीमा से अधिक तनाव होने पर यह शरीर के कई दूसरे हिस्सों को प्रभावित करता है, जैसे—यह रक्त का दबाव बढ़ा सकता है, जिसके कारण हृदय रोग व स्ट्रोक (मानसिक आघात) का खतरा बढ़ जाता है। यह पेट में अम्ल के स्राव को भी बढ़ा सकता है, जिसके कारण अल्सरेटिव कॉलाइटिस और इरिटेबल बोवेल सिंड्रोम जैसे रोग हो सकते हैं।

तनाव हमारी प्रतिरक्षा प्रणाली को भी नुकसान पहुँचा सकता है, जिस कारण संक्रामक रोगों की गिरफ्त में आने का खतरा बढ़ जाता है। यह अस्थमा जैसे एलर्जीजन्य रोगों को भी बढ़ा सकता है और हमें चिंता व अवसाद के लंबे दौर में भी डाल सकता है, जिससे बचने के लिए अधिकांश लोग नशे की ओर बढ़ते हैं। जो लोग अपने

तनाव का सामना नहीं कर पाते, वे आत्महत्या भी कर लेते हैं। जबकि जो धैर्य के साथ सभी मुश्किलों का सामना करते हुए तनाव से रूबरू होते हैं, वे जीवन में निरंतर आगे बढ़ते रहते हैं। इसलिए यह सदैव ध्यान रखना चाहिए कि जीवन के रास्ते में से गुजरते हुए तनाव किसी भी रूप में आ सकता है, लेकिन उस तनाव का हमारे जीवन पर क्या प्रभाव पड़ेगा यानी वह हमारे जीवन को सँवारेगा या उसे समाप्त करेगा, यह इस बात पर निर्भर करता है कि हम उस तनाव का क्या समाधान निकालते हैं।

फोर्टिस हेल्थकेयर के मेंटल हेल्थ एंड बिहेवियरल साइंस की टीम द्वारा 8 शहरों के 2463 लोगों के तनाव पर एक अध्ययन किया गया, जिसमें यह पाया गया कि ज्यादातर लोग कुछ हद तक तनाव से जरूर पीड़ित रहते हैं। सर्वे में शामिल 48 फीसदी लोगों में इतना अधिक तनाव पाया गया कि उन्हें परामर्श व इलाज की जरूरत थी; जबकि करीब 30 फीसदी लोगों के जीवन में बहुत मामूली तनाव था और 22 फीसदी अपेक्षाकृत कम तनाव से जूझ रहे थे। इस अध्ययन का अप्रत्याशित नतीजा यह था कि ज्यादा तनाव से गुजर रहे 79 फीसदी लोगों के तनाव की वजह उनका अपना व्यक्तित्व था; जबकि छह फीसदी से भी कम मामलों में तनाव का कारण बाहरी परिदृश्य को पाया गया, जैसे—कार्यस्थल, कार्य का दबाव, रिश्ते व अन्य कारण।

इस अध्ययन का निष्कर्ष यह बताता है कि यदि समस्या सुलझाने के हमारे व्यवहार पर हम ध्यान दें और उसे सुधारें तो देश की बड़ी आबादी बिना किसी चिकित्सकीय परामर्श के ही अपने तनाव का सामना कर सकती है। अपने व्यवहार को कैसे समझा जाए और तनाव से कैसे मुकाबला किया जाए—यह जानना सभी के लिए बहुत जरूरी है। अनेक लोगों की जिंदगी में तनाव इसलिए आता है; क्योंकि वे एक पूर्वाग्रह के नजरिये से दुनिया को देखते हैं कि दुनिया ऐसी ही होनी चाहिए और जब उनका वह नजरिया गलत सिद्ध होता है, तो वह उसे मानने के लिए, स्वीकारने के लिए तैयार नहीं होते। यदि वर्तमान परिस्थितियों की वास्तविकता को स्वीकारते हुए कार्य किया जाए तो यह निश्चित है कि हमारा तनाव कम होता है।

तनाव का भली प्रकार सामना करने के लिए हमें अपने शरीर व मन को शांत रखने वाले उपायों को अपनाना चाहिए, जैसे—योग, प्राणायाम व ध्यान का अभ्यास करना, घूमना, संगीत सुनना या रुचिकर कार्य करना इत्यादि। इन्हें नियमित करने से मन तनावमुक्त होता है और इससे व्यक्ति फिर किसी भी तरह का कार्य करने के लिए सशक्त हो जाता है, कार्य करने के लिए मानसिक रूप से तैयार हो जाता है और तनाव का भली प्रकार सामना करते हुए उसे दूर करता है। प्राणायाम व ध्यान के अभ्यास से श्वास की गति नियंत्रित होती है, इस प्रक्रिया के दौरान मन कुछ समय के लिए ही सही, तनाव के बोझ से मुक्त होता है और अपनी समस्याओं के समाधान भी खोजता है।

तनाव से जूझने वाला व्यक्ति जब ध्यान, प्राणायाम, मंत्रजप आदि करता है, तो ऐसा नहीं होता कि इनके द्वारा उसका तनाव कम हो जाता है, बल्कि इस दौरान कुछ ऐसा होता है कि उसके अंदर तनावजन्य परिस्थितियों से जूझने की सामर्थ्य आ जाती है या तनावजन्य संबंधी परेशानियों का उसे उचित समाधान मिल जाता है, जिससे उसका तनाव कम होता है। कभी-कभी तनाव को दूर करने के लिए बातचीत करना, सक्रिय होकर सुनना भी एक अच्छा उपाय साबित होता है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार—पारस्परिक संबंधों में तनाव से बचने के लिए यदि सामने वाले की बात सुनना पसंद करें, तो रिश्तों से संबंधित तनाव कम होते हैं। इसके अलावा यदि व्यक्ति अंतर्मुखी प्रकृति का भी है, तो भी उसे ऐसे भरोसेमंद व्यक्ति की खोज करनी चाहिए, जिस पर वह विश्वास कर सके और उससे खुलकर अपने मन की बात कह सके, जिसके कारण वह परेशान है; क्योंकि जिस तरह आर्थिक आजादी पारिवारिक अर्थसंबंधी तनाव से छुटकारा दिलाती है, उसी तरह मददगार दोस्त व आत्मीय परिजन व्यक्ति का तनाव कम करने में बहुत सहायक होते हैं। तनाव से निपटने में नशे की ओर अपने कदम बढ़ाना नुकसानदायक साबित होता है; क्योंकि इससे अन्य शारीरिक व मानसिक रोगों का खतरा बढ़ जाता है।

अतः मनोचिकित्सकों की यही सलाह है कि तनाव को नजरअंदाज करने या यह सोचने भर से कि यह तनाव दूर हो जाएगा, इससे बेहतर यही है कि यह पता लगाया जाए कि तनाव की असली वजह क्या है, और फिर उसे दूर करने या कम करने का उपाय किया जाए। तनावमुक्ति का यही सही समाधान है। ❑

ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार— 109

मदिरापान पर यौगिक प्रक्रियाओं के प्रभाव

जीवन दो विपरीत ध्रुवों के मध्य गतिमान रहता है। सुख और दुःख, लाभ-हानि, यश-अपयश तथा जीवन और मृत्यु, जीवन के शाश्वत सत्य हैं, जिनका सामना किसी-न-किसी रूप में प्रत्येक मानव को करना ही पड़ता है। कुछ व्यक्ति जीवन की समस्याओं का सामना करते हैं व कुछ हार मानकर पलायन कर जाते हैं। पलायनवादी प्रकृति की प्रमुख प्रक्रिया है—मादक द्रव्यों का सेवन करना। निराशा के क्षणों में बोझ व दुःख को भुलाने के साधन के नाम पर व्यक्ति मादक द्रव्यों का सहारा लेने लगता है।

आज के व्यस्त मशीनी जीवन में घर-परिवार में मार्गदर्शन व संस्कार न मिल पाने के कारण व्यक्ति नशे की प्रवृत्ति की ओर बढ़ता है। धनी परिवार के व्यक्ति तो नशा करने में अपनी झूठी शान समझते हैं व उसका प्रदर्शन करते हैं। भारत जैसे देश में शराब का नशा प्रमुख माना जाता है, किंतु आज की युवा पीढ़ी नशे के नए रूपों के सघन जाल में फँसती जा रही है और नशा अब एक अंतरराष्ट्रीय समस्या बन गया है।

नशीले पदार्थ वे मादक व उत्तेजक पदार्थ हैं, जिनका प्रयोग करने से व्यक्ति अपनी स्मृति और संवेदनशीलता अस्थायी रूप से खो देता है। मदिरा, व्यक्ति के स्नायु तंत्र को प्रभावित करती है, जिससे स्वास्थ्य तो प्रभावित होता ही है साथ ही वह भले-बुरे की चेतना, उचित-अनुचित का विवेक भी खो देता है। उसके अंग-प्रत्यंग शिथिल होने लगते हैं, वाणी लड़खड़ाने लगती है व शरीर में कंपन होने लगता है। आमाशय, यकृत और हृदय शराब से बुरी तरह प्रभावित होते हैं।

शराब की लत शारीरिक, पारिवारिक, आर्थिक व सामाजिक सभी स्तरों पर अपना कुप्रभाव दिखाती है। व्यक्ति अपनी पारिवारिक व नैतिक जिम्मेदारी त्यागकर अनैतिक व असामाजिक कर्मों की ओर भी उन्मुख होता है। परिवार के लिए यह बोझ हो जाता है व समाज के लिए उसकी उपादेयता शून्य हो जाती है। एक बार शराब की लत पड़ने पर व्यक्ति निरंतर इस खाई में धँसता चला जाता है और उसके भीतर इसकी लालसा बढ़ती चली जाती है। इस लालसा की ललक इतनी तीव्र होती है कि वह अपराध करने में भी नहीं हिचकिचाता।

आखिर क्या है इस विकराल समस्या का समाधान? नशा उन्मूलन केंद्रों या कानूनी प्रतिबंधों की ओर देखा जाए तो इनकी अपनी एक सीमा है। ये व्यक्ति पर बाहरी या मानसिक दबाव तो बना सकते हैं, किंतु उसकी भीतरी प्रवृत्ति व प्रकृति बदलने में समर्थ नहीं हो पाते। योग एवं यौगिक क्रियाएँ एक ऐसा माध्यम हो सकते हैं, जो इस राह में आशा की किरण प्रतीत होते हैं। योग मात्र शरीर तक ही प्रभाव नहीं डालता, वरन इसकी क्रियाओं व विधियों की पहुँच मानवीय संस्कारों तक है।

योग की इन्हीं प्रक्रियाओं को चयनित करते हुए देव संस्कृति विश्वविद्यालय में मदिरापान पर एक शोधकार्य किया गया। उसका शीर्षक है—**"पुरुषों के मदिरापान पर चुनी हुई यौगिक प्रक्रियाओं के प्रभाव का अध्ययन"**। यह कार्य अंजनी कुमार पुंडरीक द्वारा गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार के योग विभाग के विभागाध्यक्ष प्रो. ईश्वर भारद्वाज के निर्देशन में सन् 2012 में संपन्न किया गया। इसमें स्वतंत्र चरों के रूप में यौगिक षट्कर्मों में से जलनेति, वमनधौती, अग्निसार एवं वातक्रम कपालभाति को लिया गया। इसके साथ ही आसनों के क्रम में सूक्ष्मव्यायाम व सूर्यनमस्कार के साथ कुछ अन्य आसनों को भी सम्मिलित किया गया। प्राणायाम के क्रम में नाड़ीशोधन, सूर्यभेदी व भ्रामरी को लेते हुए ऊँकार का जप भी करवाया गया। परतंत्र चर के रूप में अल्कोहल के प्रभाव को जानने के लिए लिवर फंक्शन टैस्ट (LFT) के अंतर्गत Serum Glutamic-oxaloacetic transaminase (S.G.O.T.) तथा Serum Glutamic-पायरुविक ट्रान्समिनेस (Pyruvic Transaminase) Test (S.G.P.T.) का प्रयोग किया गया।

इस शोध अध्ययन हेतु 25 से 50 वर्ष की आयु के 40 प्रयोज्यों को उत्तराखंड में नई टिहरी जिले के चंबा नामक क्षेत्र से चुना गया। उपरोक्त परीक्षण में अभ्यास से

पूर्व विविध यौगिक क्रियाओं के अभ्यास करवाए जाने पर अत्यंत सकारात्मक परिणाम प्राप्त किए गए। शोधार्थी ने पाया कि योग की चयनित क्रियाओं का शराब के प्रयोग से विकृत लिवर पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। साथ ही इससे शराब छोड़ने की प्रेरणा भी व्यक्ति को मिलती है।

शारीरिक ऊर्जा सामान्यत: इंद्रिय जगत व भौतिक जगत की ओर उन्मुख होती है। ऐसे में छोटी-छोटी समस्याएँ व चुनौतियाँ भी विकराल नजर आने लगती हैं। उनके समक्ष मनुष्य को अपना अस्तित्व बौना-सा प्रतीत होने लगता है। ऐसे में वह बहक जाता है, भटक जाता है और मदिरापान जैसे विष को औषधि समझकर उपयोग करने की नासमझी कर बैठता है। ऐसे में योग विशेषत: यौगिक मनोभूमि व दृष्टिकोण ही व्यक्ति को सही राह दिखा सकते हैं। ये ही वह प्रकाशस्तंभ साबित हो सकते हैं, जिसके उजाले में भटकन को एक दिशा मिले व अँधियारे में प्रकाश का आभास हो सके। योग में वह प्रेरणा, वह शक्ति है, जिसके माध्यम से मदिरापान तो क्या जीवन के किसी भी हलाहल को अमृत में परिवर्तित करने की क्षमता प्राप्त हो सकती है। आज यदि जनसामान्य में इसको अपनाया जाए तो नशे की अनेकों अन्य समस्याओं से भी छुटकारा पाया जा सकता है। ❑

एक बार एक नाव में एक गणितज्ञ यात्रा कर रहा था। उस नाव में मात्र वो और माँझी, दो ही सवार थे। वक्त काटने तथा अपनी विद्वता की धाक जमाने के लिए गणितज्ञ ने माँझी से प्रश्न किया—"तुमने कभी गणित पढ़ा है?" माँझी बोला—"नहीं महाशय! मैंने कभी गणित नहीं पढ़ा।" कुछ उपेक्षा भरे स्वर में गणितज्ञ बोला—"तब तो तुम्हारी चार आने जिंदगी बेकार चली गई।" कुछ देर मौन रहने के बाद गणितज्ञ पुन: बोला—"अच्छा तुमने भूगोल तो पढ़ा ही होगा। माँझी ने विनम्र स्वर में उत्तर दिया—"नहीं बाबूजी! भूगोल का क्या मतलब है, यह मैं नहीं जानता।" सुनकर गणितज्ञ महोदय बोले—"तब तो तुम्हारी और चार आने जिंदगी यों ही बेकार चली गई।"

माँझी को झुँझलाहट तो हुई, पर वह चुप ही रहा। कुछ देर पश्चात दैवयोग से जोर का तूफान आया और नाव लड़खड़ाने लगी। उछलती लहरों पर नाव जोर के झटके खाने लगी। नाव सँभालते हुए माँझी ने गणितज्ञ महोदय से कहा—"बाबूजी! आपको तैरना तो आता होगा?" गणितज्ञ घबराकर बोला—"नहीं, मैंने तो कभी तैरना नहीं सीखा।" अब नाविक मुस्कराते हुए बोला—"गणित और भूगोल न जानने के कारण भले ही मेरी आठ आने की जिंदगी बेकार चली गई हो, परंतु तैरना नहीं जानने के कारण आपकी तो पूरी जिंदगी ही जा रही है। नाव का पार लगना मुश्किल है। आप तैरना जानते तो बच जाते।"

अब गणितज्ञ ने महसूस किया कि ज्ञान की उपयोगिता प्रत्येक व्यक्ति के लिए परिस्थिति व समय के अनुसार ही तय होती है। जो समय पर काम आ जाए, वही सच्चा ज्ञान है।

आयुर्वेदिक गुणों से युक्त दूध

अपने देश में दुधारू पशुओं में गाय एवं भैंस जैसे पालतू जानवरों की गणना प्रमुख रूप से की जाती है, किंतु भेड़, बकरी को प्रायः भुला ही दिया जाता है। ये दोनों ही जानवर उतने ही महत्त्वपूर्ण हैं, जितने कि गाय और भैंस। दुग्ध उत्पादन की दृष्टि से बकरी एक महत्त्वपूर्ण पशु है, किंतु इसके पालन-पोषण की ओर पर्याप्त ध्यान न दिए जाने के कारण इसका समुचित लाभ नहीं मिल पाता। यदि इसे एक व्यवसाय का रूप दिया जा सके तो यह आर्थिक स्रोत का महत्त्वपूर्ण अंग बन सकती है।

सर्वेक्षणों के अनुसार अपने देश में बकरी के दूध का उत्पादन प्रतिवर्ष सत्तर हजार टन के लगभग होता है, जिसमें बिआने के बाद बकरी लगभग पचास कि०ग्रा० तक दूध देती है, जो कि विकसित देशों की तुलना में बहुत कम है। भारत में बकरी के दूध उत्पादन में वृद्धि की अनेक संभावनाएँ हैं, जिनमें बकरी की उन्नत नस्लों का वैज्ञानिक विधि से पालन-पोषण करना प्रमुख है। इसमें सरकारी सहायता भी अपेक्षित है। बकरी पालन का प्रमुख लाभ यह है कि अन्य पशुओं की तुलना में यह काफी सस्ती पड़ती है और जल्दी लाभ देना शुरू कर देती है। गाय के दूध की तुलना में बकरी का दूध शीघ्र एवं सुगमता से पचने वाला होता है। तुलनात्मक दृष्टि से इसमें औषधीय गुण अधिक होते हैं।

आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रंथ 'भावप्रकाश निघंटु' के अनुसार बकरी के दूध में अनेकों पोषक घटक होते हैं। विगत दिनों हुए शोध यह बताते हैं कि इसमें उपस्थित घटकों की मात्रा कुछ इस प्रकार है—प्रोटीन 3.7 %, वसा 5.6 %, कार्बोहाइड्रेट 4.7 %, कैल्सियम 0.17 %, फोस्फोरस 0.12 %, आयरन 0.3 %, कैलोरी 84 तथा विटामिन ए 182/100ग्राम, रिबोफ्लेबिन 40/100 ग्राम विद्यमान है। बकरी के दूध के गुणों का वर्णन करते हुए उक्त निघंटु के दुग्धवर्ग में कहा गया है—

छागं कषायं मधुरं शीतं ग्राहि तथा लघु।
रक्तपित्तातिसारघ्नं क्षयकासज्वरापहम्॥
अजानामल्पकायत्वात्कटुतिक्त निषेवणात्।
स्तोकाम्बुपानाद्व्ययायामात्सर्वरोगापहं पयः॥

अर्थात—बकरी का दूध कषाय तथा मधुर रसयुक्त, शीतल, ग्राही, लघु, सुपाच्य एवं रक्तपित्त, अतिसार, क्षय—टीबी, खाँसी और ज्वर को दूर करने वाला होता है। क्षयरोग में प्रायः चिकित्सक बकरी के दूध के सेवन को प्राथमिकता देते हैं, क्योंकि वह विविध प्रकार की वनौषधियों को आहार रूप में ग्रहण करती है। बकरी शरीर से छोटी होती है और कटु तथा तिक्त रसयुक्त पौधों की पत्तियाँ, फलियाँ आदि खाती है। वह थोड़ा जल पीती है और चलना-फिरना भी अधिक करती है। अतः इसका दूध सर्वरोगनाशक होता है।

नहि प्राणहरः शुरः शूरः प्राणप्रदोऽर्थिनाम्।
एतदेव परं शौर्यं यत्परप्राणरक्षणम्॥

किसी के प्राण लेना शूरता नहीं है, किंतु शूर वे ही हैं, जो दूसरों की प्राणरक्षा करते हैं। शूरता वही है, जो दूसरों के प्राणों की रक्षा करे।

आर्थिक दृष्टि से भी बकरियाँ सस्ती पड़ती हैं। वे केवल अठारह महीने की आयु में बच्चा पैदा करना शुरू कर देती हैं; जबकि अन्य जानवरों के बच्चे तीन-चार साल बाद पैदा होना शुरू होते हैं। आहार की दृष्टि से भी इन्हें विशेष चूनी, चोकर, खल आदि की आवश्यकता नहीं पड़ती। वे पौधों की पत्तियों, घास-फूस आदि से ही अपना पेट भर लेती हैं। महँगाई के इस दौर में इनका दूध भी सस्ता होता है। बकरी के दुग्ध उत्पादन-व्यवसाय को यदि प्रोत्साहित किया जा सके तो सेहत के साथ ही आर्थिक समृद्धि में भी इससे बहुत अधिक सहायता मिल सकती है। ❑

गलतियों से सीखें और भूलें सुधारें

गलती होने पर घबराएँ नहीं; क्योंकि दुनिया में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं, जिसने कभी कोई गलती न की हो। जितने भी महान लोग हुए हैं, उन्होंने भी अनेकों गलतियाँ की हैं। गलतियों से ही उन्होंने सीखा है और उन गलतियों को सुधार कर ही वे अपने जीवन में आगे बढ़े हैं। एक तरह से देखा जाए तो इनसान गलतियों का पुतला है। हर पल-हर क्षण गलतियाँ करता रहता है, गिरता है, उठता है और फिर गलतियाँ करता है और फिर आगे भी बढ़ता है। दुनिया में जितने भी आविष्कार हुए हैं, उन्हें खोजने की राह पर अनगिनत गलतियाँ हुई हैं, उन गलतियों को सुधारते हुए आगे बढ़ने पर जब सभी गलतियाँ समाप्त हुईं, तब कहीं जाकर वे आविष्कार सफल हुए और आज हम उनका सफल ढंग से उपयोग कर पा रहे हैं।

महान वैज्ञानिक अल्बर्ट आइंस्टाइन का कहना था कि जिस व्यक्ति ने जीवन में कभी गलतियाँ नहीं कीं, इसका मतलब यही है कि उस व्यक्ति ने जीवन में कभी कुछ नया करने का प्रयास भी नहीं किया। जो कोई भी कुछ नया करने का प्रयास करता है, वही गलतियाँ करता है और सीखता भी वही है। जो गलतियाँ करने से डरता है, वही सीखने से भी डरता है। इसलिए अब तक हुई गलतियों पर पछताने के बजाय, अनजाने में हो जाने वाली गलतियों से डरने के बजाय—आगे बढ़ने की ओर सोचिए और उन गलतियों को दोबारा न दोहराइए।

गलतियाँ तभी तक बार-बार दोहराई जाती हैं, जब तक हम उन गलतियों पर ध्यान नहीं देते और उन्हें सुधारते नहीं हैं। जब तक हम अपनी गलतियों से कुछ सीखते नहीं हैं, वे हमारा पीछा नहीं छोड़तीं और इस दौरान तरह-तरह की गलतियाँ अनजाने में ही हमारे से हो जाती हैं। बुद्धिमान व्यक्ति वे ही हैं, जो अपनी किसी भी गलती को दोहराते नहीं हैं और उससे सीख लेकर अपने कार्य व व्यवहार, दोनों में सुधार लाते हैं। वास्तव में जब हम अपनी गलतियों पर विचार करते हैं, तो अपने काम के साथ-साथ अपने व्यक्तित्व की कमियों को भी दूर कर रहे होते हैं, इसलिए अपनी गलतियों पर ध्यान देते रहना और उन्हें सुधारना बहुत जरूरी है।

जब हम किसी व्यक्ति पर उसकी किसी गलती के लिए नाराज होते हैं, गुस्सा करते हैं तो उसे गलती से बाहर निकालने के बजाय, गलती की मनोग्रंथि के भँवर में फँसा देते हैं; जबकि होना यह चाहिए था कि हम उसे गलती बताने के साथ-साथ उस गलती को कैसे न दोहराया जाए, यह करने के लिए भी प्रेरित करते।

जब भी हम कुछ गलत कर रहे होते हैं, तब हमें यह एहसास होता है कि हम क्या कर रहे हैं। मनोवैज्ञानिक भाषा में किसी कार्य को करने में हमारे मन से जो प्रतिक्रिया मिलती है, उसे यदि हम अनसुना कर देते हैं तो गलतियाँ ज्यादा करते हैं और यदि उस प्रतिक्रिया को सुनते हैं तो कम गलतियाँ करते हैं; क्योंकि गलतियाँ प्राय: अनजाने में हो जाती हैं, भूलवश हो जाती हैं। अपनी गलतियों को ध्यान में रखते हुए किसी काम को करने के प्रति हम जितना सचेत होते हैं, उतनी ही कम गलतियाँ हमसे होती हैं और कभी-कभी तो गलतियाँ न के बराबर होती हैं।

समाज में कुछ ऐसे लोग भी होते हैं, जो अपने द्वारा की गई गलतियों को कभी स्वीकार नहीं करते। ऐसे लोगों को हमेशा यह भ्रम बना रहता है कि वे गलतियों के लिए नहीं बने और वे अपने कार्य को उत्कृष्टता के साथ कर रहे हैं। ऐसे लोगों की यह सोच ही उनकी सबसे बड़ी भूल होती है और इस कारण जब उनसे गलतियाँ होती हैं तो उन्हें वे सुधार नहीं पाते और जीवन में कुछ विशेष भी नहीं कर पाते। ऐसे लोगों को कभी कोई अपनी सलाह नहीं देता, क्योंकि सामने वाले व्यक्ति को यह पता होता है कि उसे कितना भी समझाया जाएगा, वह अपनी गलती को स्वीकार नहीं करेगा।

जीवन में यदि सफलता पाना है तो सबसे पहले अपनी कमियों व गलतियों को स्वीकार करना सीखें। गलतियों को स्वीकार करने से ही हमें अपनी कमजोरियों व कमियों का पता चलता है और फिर उनमें सुधार लाने से हम सफलता की राह पर आगे की ओर बढ़ते हैं। जब

तक हम अपनी गलतियों को स्वीकार नहीं करते और उन्हें सुधारते नहीं हैं, तब तक हम सफलता की मंजिल से कोसों दूर होते हैं।

व्यक्ति के जीवन में होने वाली गलतियाँ उसके ऊपर बहुत गहरा प्रभाव डालती हैं और आशा के विपरीत परिणाम प्रस्तुत करती हैं, जैसे—कार्यस्थल पर होने वाली गलतियों से नौकरी जा सकती है, सड़क पर होने वाली गलतियों से जान जा सकती है व रिश्तों में होने वाली गलतियों से रिश्ते टूट सकते हैं। इसी तरह अर्थनिवेश में होने वाली गलतियों से आर्थिक रूप से बड़ा नुकसान हो सकता है। इस तरह गलतियाँ अपना भयानक परिणाम प्रस्तुत करती हैं। इन गलतियों से जीवन में कितना भी बड़ा नुकसान क्यों न हो, लेकिन यह सदैव ध्यान रखना चाहिए कि गलतियों के कारण एक दरवाजा बंद होगा, तो दूसरा अपने आप खुलेगा। इसलिए निराश होने की जरूरत नहीं है, बल्कि अपना आत्मविश्वास बनाए रखने और सार्थक पहल करने की जरूरत है।

वास्तव में गलतियाँ व्यक्ति को बेहतर बनाने का एक जरिया हैं। हर व्यक्ति पर अपनी की गई गलतियों का अलग-अलग प्रभाव पड़ता है। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि हम अपनी गलतियों को किस रूप में लेते हैं। गलतियाँ लोगों को अपनी योजनाओं व काम के तरीके में सही-सही बदलाव करने का मौका देती हैं और उसे सफलता के नजदीक ले जाने के साथ-साथ बेहतर इनसान भी बनाती हैं।

अत: इस बात पर ध्यान देने की जरूरत है कि हर गलती हमें सीखने का मौका देती है तो उसके साथ यह भी ध्यान में रखना जरूरी है कि एक ही गलती का बार-बार दोहराव न हो। अन्यथा हम वहीं पर अटके रहेंगे और जीवन में आगे नहीं बढ़ पाएँगे। अत: गलतियों को अपनी आदत न बनाएँ, नहीं तो वे हमारी उन्नति में बाधा साबित होंगी।

निष्कर्ष रूप में हम यह कह सकते हैं कि साहसी व्यक्ति गलतियाँ करता है, परंतु उनसे हारता नहीं है और घबराता भी नहीं है। वह एक गलती को बार-बार नहीं दोहराता और इसी कारण अंत में उसे सफलता मिलती है। अत: विशिष्ट व विलक्षण व्यक्ति साहसी होते हैं और कुछ अलग करने की धुन में गलतियाँ करने से नहीं घबराते। जबकि सामान्य व्यक्ति असफल होने व हारने के डर से कुछ कर ही नहीं पाते और जीवन में उस सफलता तक नहीं पहुँच पाते, जिसके वे हकदार होते हैं। अत: गलतियाँ करने से डरें नहीं, बल्कि उनके प्रति सचेत बनें, उन्हें सुधारें और जीवन में आगे बढ़ें। ❑

एक बार महाराजा अशोक के राज्य में अकाल पड़ा। उन्होंने तत्काल अन्न के भंडार खुलवा दिए। सुबह से लेने वालों का ताँता लगता और शाम तक न टूटता। एक दिन संध्या हो गई। सबसे अंत में एक अति दुर्बल वृद्ध ने अन्न माँगा, परंतु अन्न बाँटने वाले थक चुके थे, इसलिए उन्होंने उसे अगले दिन आने को कहा। तभी एक नवयुवक आकर बोला—"यह बेचारा वृद्ध है। शरीर दुर्बल रहने के कारण पीछे रह गया। आप इसकी सहायता कर दें।" उसकी बातों से प्रभावित होकर उन्होंने वृद्ध को अन्न दे दिया। वह युवक वृद्ध की गठरी भी उठाकर उसके पीछे चलने लगा। मार्ग में एक सैनिक टुकड़ी के नायक ने उस युवक को नमस्कार किया। वृद्ध को समझ न आया कि वह युवक कौन है। उसने युवक से पूछा—"आप कौन हैं, अपना सही परिचय दीजिए।" उसे पता चला कि वह युवक और कोई नहीं, बल्कि महाराजा अशोक ही थे, जो अपनी प्रजा के कष्टों को दूर करने के लिए स्वयं ही सहायता के लिए पहुँच जाया करते थे। ऐसे प्रजापालक राजा ही इतिहास में अमर हो जाते हैं।

दिव्य-प्रेरणा के स्रोत-सप्तर्षि

एक बार सारस्वत नामक राज्य में भीषण अकाल पड़ा। लोग भूख के मारे त्राहिमाम करने लगे। अगणित लोग जीवनयापन के लिए अपनी जन्मभूमि को छोड़ अन्यत्र जाकर बसने लगे। पास ही सप्त ऋषियों का आश्रम था। वे भी आश्रम छोड़ने को विवश हुए। कई दिनों की यात्रा के उपरांत वे विदर्भ पहुँचे।

राजा वृषादर्भि को जब पता चला कि ब्रह्मज्योति की अखंड साधना में जीवनयापन करने वाले सप्त ऋषियों का राजधानी में आगमन हुआ है, तो उसने उन लोगों से महल में निवास करने की प्रार्थना की, किंतु उन्होंने विनम्र स्वर में कहा—"राजन्! हम तो तपस्वी ठहरे! गृहस्थ जीवन से एवं सुविधामय जीवन से हम दूर रहते हैं। शास्त्रों में वर्जित होने के कारण हम आपका आतिथ्य ग्रहण करने में असमर्थ हैं।"

विदर्भराज द्वारा काफी अनुनय-विनय करने के बावजूद जब उन्होंने प्रार्थना स्वीकार न की, तो उसे क्रोध आ गया और वह उनका अपमान करने के बारे में सोचने लगा। एक मंत्री ने राजा को सलाह दी—"महाराज! आप इन ऋषियों के मार्ग में गूलर के फलों में स्वर्ण भरकर बिखेर दें। कंद-मूल खाकर जीवनयापन करने वाले ये ऋषि निश्चय ही इन फलों को ग्रहण करेंगे। आपके द्वारा दिया गया स्वर्ण लेने से उनके द्वारा संचित पुण्यों का ह्रास हो जाएगा।"

विदर्भराज ने वैसा ही किया। जब सप्त ऋषि मार्ग से निकले तो उनके समूह में उपस्थित महर्षि अत्रि को वह फल दिखाई दिया, तो उन्होंने उसे उठाया, किंतु उसके भारी लगने पर वे महर्षि वसिष्ठ से बोले—"इसमें तो स्वर्ण भरा दिखाई देता है। मालूम होता है, हमारी परीक्षा ली जा रही है।" ऐसा कहते हुए उन्होंने उस फल को मार्ग पर ही फेंक दिया और ज्यों ही उन्होंने वह फल फेंका, उसमें से निकला स्वर्ण चमकने लगा। वे लोग उस ओर ध्यान न देते हुए आगे बढ़ गए। अब तो विदर्भराज और अधिक क्रोधित हो गए। वे उन्हें परेशान करने की दूसरी युक्ति सोचने लगे।

आगे चलने पर सप्त ऋषियों को एक युवा परिव्राजक दिखाई दिया। उसने उन्हें प्रणाम करते हुए कहा—"ऋषिवर! क्या आप मेरी कुछ शंकाओं का समाधान करेंगे? कृपया बताएँ कि सर्वश्रेष्ठ धर्म क्या है?" महर्षि कश्यप ने उसके प्रश्न का उत्तर दिया और बोले—"सौम्य! इस पृथ्वी पर दान, दया और कर्म ये तीन सर्वश्रेष्ठ धर्म हैं और इनका आचरण करने वालों को सांसारिक यातनाएँ नहीं सतातीं।" परिव्राजक ने पुनः पूछा—"ऋषिवर! क्या वेदाध्ययन करने वालों के लिए भी इनका पालन करना आवश्यक है?" महर्षि अंगिरा ने उत्तर दिया—"केवल वेदाध्ययन में लीन रहने से कुछ नहीं होता। मुक्ति उसे ही प्राप्त होती है, जो तदनुरूप आचरण करता है।" संतुष्ट हो परिव्राजक ने कहा—"महर्षि! मुझे अब धर्म का सार बताएँ।"

इस बार महर्षि वसिष्ठ बोले—"सारे धर्मों का सार यह है कि जो बात स्वयं को अच्छी न लगे, उसका आचरण दूसरों के लिए भी नहीं करना चाहिए। जो व्यक्ति पराई स्त्री को अपनी माता के समान पूजनीय मानता है, परधन को मिट्टी के समान तुच्छ और संसार के सभी जीवों को अपने समान देखता है, वह वास्तव में धर्माचरण करता है।" यह सुन परिव्राजक संतुष्ट हो गया। इतने में सप्त ऋषियों का ध्यान पास के सरोवर के मृणालों की ओर गया। वे उन्हें निकालने के लिए बढ़े, तो वहाँ एक राक्षसी प्रकट हुई और वह उन्हें तंग करने लगी। इस राक्षसी को विदर्भराज ने भेजा था।

परिव्राजक कुछ देर तक तो देखता रहा, बाद में उसने अपना दंड उठाया व राक्षसी का सिर काट दिया। जब सप्त ऋषियों ने परिव्राजक की ओर देखा, तो उन्हें वहाँ देवराज इंद्र दिखाई दिए। देवेंद्र ने उनसे कहा—"ऋषिवृंद! आप धन्य हैं। आपने सचमुच लोभ, क्रोध, मोह एवं दुर्भावना पर नियंत्रण पाया है। मैं आपको वरदान देता हूँ कि आपको भूख, प्यास और सांसारिक पीड़ाएँ कभी नहीं सताएँगी और आपके स्मरण मात्र से मानव जाति अनंतकाल तक प्रेरणा ग्रहण करती रहेगी।" ❑

युगगीता — 216

ज्ञान के अवतरण से मिलती है शांति

(श्रीमद्भगवद्गीता के गुणत्रयविभाग योग नामक चतुर्दश अध्याय की छठी किस्त)

[श्रीमद्भगवद्गीता के चतुर्दश अध्याय की इससे पूर्व की किस्त में इस अध्याय के नवें एवं दसवें श्लोकों की व्याख्या की गई थी। चतुर्दश अध्याय के नवें श्लोक में योगेश्वर कृष्ण, अर्जुन से कहते हैं कि अर्जुन—सत्त्वगुण सुख में और रजोगुण कर्म में मनुष्य को लगाकर उस पर विजय प्राप्त करते हैं। साथ ही तमोगुण—ज्ञान को आवृत कर एवं मनुष्य को प्रमाद में लगाकर मनुष्य पर विजय प्राप्त करता है। यहाँ मनुष्य पर विजय प्राप्त करने का अर्थ—जीवात्मा का अपने मूलस्वरूप से भटक जाना है। मनुष्य में इस भाव का प्रकट हो जाना है कि मैं आत्मा नहीं, शरीर हूँ। इस सूत्र में भगवान अर्जुन को यह ज्ञान देते हैं कि हम व्यक्ति-व्यक्ति में अंतर को उनके बीच के अंतर से समझते हैं; जबकि सत्य यह है कि व्यक्तियों के मध्य का यह अंतर—गुणात्मक है, उनके अंदर उपस्थित गुणों के प्रभुत्व के कारण है। तमोगुण का आधिपत्य—मनुष्य को प्रमाद में, आलस्य में, निष्क्रियता में निरत करता है, रजोगुण की प्रचुरता—व्यक्ति को सुख के साधनों की तलाश में लगाती है, गतिशील करती है तो सतोगुण की प्रचुरता मनुष्य को सुख, आसक्ति की ओर दौड़ाती है। श्रीभगवान कहते हैं कि ये व्यक्तियों के मध्य के अंतर, उनके व्यक्तित्वों की ये भिन्नताएँ—व्यक्तियों में प्रकृति के गुणों के अंतर के कारण हैं। परम आनंद, परम सिद्धि की अवस्था—इन तीनों गुणों के पार जाने के उपरांत ही प्राप्त होती है।

यह कहने के बाद श्रीभगवान अगले श्लोक में अर्जुन से कहते हैं—"हे भरतवंशी अर्जुन! सतोगुण—रजोगुण और तमोगुण को दबाकर आगे बढ़ता है तो रजोगुण—सतोगुण और तमोगुण को दबाकर आगे बढ़ता है। इसी प्रकार तमोगुण—सतोगुण व रजोगुण को दबाकर आगे बढ़ता है।" यहाँ दबाकर आगे बढ़ने का अर्थ—उस गुण की प्रमुखता व अन्य दो गुणों की गौणता से लिया जाना चाहिए। इसे कुछ ऐसे भी समझ सकते हैं कि यदि किसी में सतोगुण की अधिकता है तो उस व्यक्ति के रजोगुण व तमोगुण भी उसी प्रवाह का अंग बन जाते हैं। ठीक ऐसा ही अन्य गुणों के आधिपत्य के समय घटता है। इसलिए जीवात्मा को यदि मुक्त होना है तो एक गुण की ही नहीं, समस्त गुणों की पहुँच से पार जाने का पुरुषार्थ अपेक्षित है।]

इतना कहने के बाद श्रीभगवान अर्जुन को बताते हैं कि उसे कब यह समझना चाहिए कि सतोगुण की प्रचुरता है—

सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन्प्रकाश उपजायते।
ज्ञानं यदा तदा विद्याद्विवृद्धं सत्त्वमित्युत॥ 11॥

शब्द विग्रह—सर्वद्वारेषु, देहे, अस्मिन्, प्रकाशः, उपजायते, ज्ञानम्, यदा, तदा, विद्यात्, विवृद्धम्, सत्त्वम्, इति, उत।

शब्दार्थ—जब (**यदा**) इस (**अस्मिन्**) मनुष्य शरीर में (**देहे**) सब द्वारों (इंद्रियों और अंतःकरण) में (**सर्वद्वारेषु**) प्रकाश (स्वच्छता) (**प्रकाशः**) और (**उत**) विवेक (**ज्ञानम्**) प्रकट हो जाता है (**उपजायते**), तब (**तदा**) यह (**इति**) जानना चाहिए कि (**विद्यात्**) सत्त्वगुण (**सत्त्वम्**) बढ़ा हुआ है (**विवृद्धम्**)।

अर्थात—जब इस मनुष्य शरीर में सब द्वारों (अर्थात दसों इंद्रियों एवं अंतःकरण) में प्रकाश और विवेक प्रकट

हो जाता है, तब यह जानना चाहिए कि मनुष्य में सतोगुण बढ़ा हुआ है। प्रकाश का अर्थ—रजोगुण द्वारा उत्पन्न इंद्रिय कामनाओं की पीड़ा व वासनाओं के उद्वेग से तथा तमोगुण द्वारा प्रदत्त निद्रा, आलस्य व प्रमाद के अज्ञान से पार चले जाना है। इसी प्रकार ज्ञान का अर्थ—विवेक अर्थात सत्-असत्, नित्य-अनित्य, शाश्वत-मरणधर्मा, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य के मध्य के अंतर का बोध हो जाना है। भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि इन दोनों—प्रकाश व ज्ञान का प्राकट्य इस बात का प्रतीक है कि उस व्यक्ति के भीतर सतोगुण का आधिपत्य या प्रमुखता है।

स्पष्ट है कि सतोगुण के आगमन का अर्थ जागरण से है, चेतनता से है। एक छोर पर तमोगुण है, जिसका आधिपत्य मनुष्य को गहन तंद्रा में डाल देता है तो दूसरे छोर पर सतोगुण है, जहाँ जाग्रति की—चेतनता की शुरुआत होती है। जब जीवन की दिशा, जीवन के प्रति समझ स्पष्ट होने लगती है, सब कुछ साफ-साफ दिखने लगता है तो इसका मतलब है होश की, जाग्रति की, सतोगुण की प्रचुरता की स्थिति है। जिसमें इस गुण का आधिक्य जितना होगा, वह उतना ही सात्त्विक, उतना ही पवित्र, उतना ही साधु बनता चला जाएगा।

सतोगुण के आगमन का संकेत—प्रकाश व ज्ञान के अवतरण से मिलता है। मनुष्य अपना जीवन एक बेहोशी में, तंद्रा में जीता है। उसमें होश का आगमन—ज्ञान के आने से, विवेक के आने से, प्रकाश के आने से होता है। व्यक्ति, जीवन की राहों को, दैवीय संकेतों को, आत्मा की पुकार को सुन-देख नहीं पाता; क्योंकि वह भ्रांतियों से, तंद्रा से घिरा बैठा है। उसे जीवन की राहों का, अपने उद्देश्य का, विचारों की स्पष्टता का कोई भान नहीं है और ऐसे में जीवन एक अजीब-सी उलझन का शिकार हो जाता है। व्यक्ति कार्य करता तो है, पर एक अजीब-सी बेहोशी में, भ्रांति में, अन्यमनस्कता में करता है। जब जीवन में प्रकाश का अवतरण होता है तो उसे अपनी जीवन राहें स्पष्टता से दिखने लग जाती हैं—एक बोध का भाव, एक जाग्रति का भाव पैदा होता है।

मनुष्य भ्रांतियों से तब घिरता है, जब उसे या तो दिख न रहा हो या देखने की कोई इच्छा मन में न हो। जैसे कोई किसी कमरे में बैठा है व उसकी आँखें सही हैं, पर उसे दिखाई न पड़े तो उसका एक कारण यह हो सकता है कि कमरे की बिजली ही गुल हो गई है और ऐसे में उसे प्रकाश की आवश्यकता होगी। इसका एक अन्य कारण यह हो सकता है कि वह या तो जड़ता के कारण स्वयं ही अपनी आँखें बंद करके बैठ जाए या बिजली का बटन दबाने से मना कर दे तो ऐसी अवस्था में उसे ज्ञान की आवश्यकता है। श्रीभगवान कहते हैं कि प्रकाश व ज्ञान के प्राकट्य से मनुष्य जीवन को होशपूर्वक जीता है और तब उसे सब साफ-साफ एवं स्पष्ट दिखाई पड़ता है—ठीक वैसे ही, जैसे बिजली आ जाने पर हमें दृश्य साफ-साफ दिखने लगते हैं। यह प्रकाश व ज्ञान का प्राकट्य—सतोगुण की बढ़ोत्तरी से होता है।

संदेश स्पष्ट है कि सतोगुण की उपस्थिति मनुष्य के जीवन को होश व चेतनता से भर देती है। होशपूर्वक कार्य किया जाए तो झाड़ू लगाना भी ध्यान बन जाता है और बेहोशी में किया गया ध्यान भी निद्रा ही बना रहता है। इशारा सतोगुण की ओर है, अंतस् में उपस्थित गुण की ओर है, बाहर के कर्मों की ओर नहीं। बाहर के कार्य तो हम आधे सोए हुए भी कर लेते हैं, पर अंदर का जागरण ही सच्चा जागरण है। जो व्यक्ति जितना होश में आता है उसके कर्म, उसका आचरण, उसकी उपस्थिति ये सब—शुभ को, प्रेम को, सात्त्विकता को, कल्याण को जन्म देंगे।

जापान में एक फकीर की कथा आती है, जो परम जाग्रति को, संबोधि को, महाज्ञान को उपलब्ध हो गए थे। उस देश के सम्राट ने अपने एक मंत्री को उनसे मिलने भेजा। उसे कहा कि उन फकीर से कुछ ज्ञान लेकर आना। वह मंत्री, उन फकीर से मिलने पहुँचा तो उसने देखा कि वे तो कुछ विशेष नहीं कर रहे हैं। उसे लगता था कि वो उसे कुछ विशेष कार्य करते दिखेंगे, कोई नया मंत्र, कोई नया श्लोक, कोई नया ज्ञान उनसे सीखने को मिलेगा। उसे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि वे फकीर तो कुछ नया करते ही नहीं हैं, बस, एक जगह पर बैठे हुए हैं, उनके मुख पर मुस्कान है और उनके चारों ओर एक गंभीर शांति है, पर वे कुछ अनूठा करते नहीं दीखते।

मंत्री उन फकीर के पास पूरा एक दिन बैठा रहा। फकीर बीच में उठकर अपना कार्य करते। जो उनसे मिलने आते उनसे प्रेमपूर्वक मिलते। किसी की कोई जिज्ञासा होती तो उसका समाधान करते। उन्हें बीच में भूख लगी तो उन्होंने उठकर चावल बनाए, मंत्री को भी आधे चावल खाने को दिए। मंत्री ने उनसे पूछा—"कुछ ज्ञान की बात बताएँ।" फकीर मुस्कराए और बोले—

"जीवन को होशपूर्वक जिओ। जागते-जागते जीवन जिओ।" मंत्री को उनका उत्तर अटपटा लगा। उसने सोचा कि मैं कौन-सा सोते-सोते जीवन जी रहा हूँ। न जाने ये क्या कह रहे हैं?

वह अपने इन्हीं मनोभावों के साथ सम्राट के पास वापस पहुँचा। उसने अपनी भेंट व फकीर से हुई बातों का विवरण सम्राट को सुनाया। उस समय कुलगुरु भी वहाँ दरबार में उपस्थित थे। मंत्री ने उनसे पूछा—"गुरुवर! फकीर तो कुछ विशिष्ट साधना नहीं करते, फिर उन्हें महाज्ञान कैसे प्राप्त हो गया?" कुलगुरु बोले—"वत्स! जो जीवन होशपूर्वक जीना जान जाता है, वो ज्ञान को उपलब्ध हो जाता है। फिर उनका होश ही पर्याप्त है, उन्हें अलग से कुछ करने की आवश्यकता नहीं पड़ती।"

यह होश, यह बोध, यह जागरूकता—"सतोगुण के प्रभाव से व्यक्ति में आते हैं। सतोगुण के आधिक्य से प्रकाश व ज्ञान का अवतरण होता है, जीवन के प्रति एक स्पष्ट सोच, एक जागरूक भाव पैदा होता है। साथ ही पैदा होता है विवेक—होशपूर्वक कार्य करने की क्षमता, यह ज्ञान कि जीवन को जागरूकता के साथ जीने की आवश्यकता है। श्रीभगवान कहते हैं कि यह जागरूकता—सतोगुण की उपस्थिति का, प्रचुरता का, बहुलता का प्रमाण है।

इसके बाद भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि—

लोभः प्रवृत्तिरारम्भः कर्मणामशमः स्पृहा।
रजस्येतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्षभ॥12॥

शब्द विग्रह—लोभः, प्रवृत्तिः, आरम्भः, कर्मणाम्, , अशमः, स्पृहा, रजसि, एतानि, जायन्ते, विवृद्धे, भरतर्षभ।

शब्दार्थ—हे भरतवंश में श्रेष्ठ अर्जुन! (**भरतर्षभ**) रजोगुण के (**रजसि**) बढ़ने पर (**विवृद्धे**) लोभ (**लोभः**), प्रवृत्ति (**प्रवृत्तिः**), कर्मों का (**कर्मणाम्**)आरंभ (**आरम्भः**), अशांति और (**अशमः**) स्पृहा (**स्पृहा**) ये वृत्तियाँ (**एतानि**) पैदा होती हैं (**जायन्ते**)।

अर्थात—हे भरतवंश में श्रेष्ठ अर्जुन! रजोगुण के बढ़ने पर मनुष्य में लोभ प्रवृत्ति, कर्मों का आरंभ, अशांति और स्पृहा—ये वृत्तियाँ पैदा होती हैं। जब व्यक्ति में रजोगुण बढ़ता है, तब मनुष्य में लोभ आदि प्रवृत्तियों की बढ़ोत्तरी होती है। सत्य तो यह है कि हर व्यक्ति में, हर काल में—ये तीनों गुण, उपस्थित होते हैं। कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं है, जो यदि गुणातीत अवस्था को प्राप्त नहीं हुआ है तो उसे इन तीन गुणों से मुक्त, पार व परे कहा जा सके। प्रत्येक के भीतर सतोगुण का सुख व प्रकाश, रजोगुण की कामनाएँ व आकांक्षाएँ तथा तमोगुण का अज्ञान व निष्क्रियता—किसी-न-किसी मात्रा में उपस्थित रहते ही हैं, परंतु इन गुणों की मात्रा स्थायी या समान कभी भी नहीं होती।

जब एक गुण बढ़ता है व अपना प्रभुत्व प्रदर्शित करता है तो शेष दो, गौण हो जाते हैं, पर समाप्त नहीं होते। जैसे कोई अज्ञानवश तमोगुणवश क्रोध करे तो उस समय सतोगुण की शांति, मन का सुख—सब गौण हो जाते हैं, नेपथ्य में चले जाते हैं। इसी प्रकार जब रजोगुण की प्रभुता होती है, तब शेष दो गुण—गौण हो जाते हैं व व्यक्ति में, लोभ-लालच, कर्मों को प्रारंभ करने का भाव, अशांति, महत्त्वाकांक्षाएँ इत्यादि जन्म लेती हैं। रजोगुण की बढ़ोत्तरी के साथ इनकी भी बढ़ोत्तरी होती है।

लोभ का अर्थ है—कुछ पाने की लालसा, इस लालसा से प्रवृत्त होकर मनुष्य में कामनाएँ, प्रवृत्तियाँ व महत्त्वाकांक्षाएँ पनपती हैं और उनके पूरा न हो पाने पर या यथोचित तरीके से पूरा न हो पाने पर—मन में अशांति व उद्विग्नता जन्म लेती हैं। मन भिखारी की तरह से है, सदा कुछ माँगता ही रहता है। उसे जितना दें, उतनी ही उसकी कामना बढ़ जाती है। मिलने से किसी की कामना शांत नहीं होती, बल्कि और बढ़ जाती है। मोटर साइकिल की कामना पूर्ण होती है तो कार पाने की कामना जन्म ले लेती है। कार आ जाए तो और बढ़िया ब्रांड कार की कामना जन्म लेती है। फिर घर की, बड़े व्यापार की, कोई-न-कोई कामना मन को दौड़ाती है।

जितना पाने की लालसा या लोभ बढ़ता है, उतनी ही इनसान की दौड़-धूप भी बढ़ती है। उतना ही व्यक्ति नए-नए तरीकों से उस वस्तु को पाने का प्रयत्न करता है। यदि एक तरीके से न मिले तो दूसरे तरीकों की तलाश करता है। इस प्रकार लोभ नए कर्मों के आरंभ को जन्म देता है और यदि उन अनेक मार्गों से भी कामना पूरी न हो पाए तो मनुष्य के हिस्से में अशांति व उद्विग्नता आती हैं। ये सब रजोगुण की बढ़ोत्तरी से होता है। श्रीभगवान कहते हैं कि यदि रजोगुण से छूटना है तो इन सबसे छूटना आवश्यक हो जाता है।

इसे एक बार फिर से समझ लेना जरूरी है। रजोगुण का प्रभुत्व, मनुष्य के मन में आसक्ति, लालसा, कुछ पाने की इच्छा पैदा करता है। लालसा की तीव्रता के अनुरूप मनुष्य में कार्य करने की प्रवृत्ति पैदा होती है। जितनी लालसा तीव्र होती है—उतना ही मनुष्य,

नए-नए, भिन्न-भिन्न तरीकों के कर्मों से, जिसके प्रति लालसा है उसे पाने का प्रयत्न करता है। इस प्रकार कर्मों का आरंभ होता है। इनसे भी जब मन की सारी कामनाएँ पूरी नहीं हो पातीं तो मनुष्य—विक्षिप्त, उद्विग्न, अशांत हो जाता है। ध्यान से देखें तो रजोगुण के कारण व्यक्ति में पैदा हो रहे ये भाव अलग-अलग नहीं, बल्कि चरणबद्ध हैं। जितनी रजोगुण की तीव्रता होगी उसी के अनुसार व्यक्ति में लोभ, वृत्तियाँ, आकांक्षाएँ, महत्त्वाकांक्षाएँ, अशांति पैदा होते हैं। रजोगुण—नियंत्रण से बाहर हो जाए तो व्यक्ति संपूर्णतया विक्षिप्त हो जाएगा।

शास्त्रों में ययाति की कथा आती है। वह राजा था। उसने सौ वर्ष का जीवन जी लिया तो मृत्यु—यम के दूत उसे लेने आए। वह उनके आगे गिड़गिड़ाने लगा कि अभी तो मेरे मन में अनकों लालसाएँ हैं, जो पूरी नहीं हुई हैं। कृपया उन्हें पूरी करने दें। एक मौका और दे दें। यमदूत बोले—"यदि तुम्हारे स्थान पर कोई और अपना जीवन देने का इच्छुक हो तो हम उसकी जीवात्मा को ले जाएँगे, तुम उसकी आयु का भोग कर लेना।" ययाति के पौत्र ने अपनी आयु उसे दे दी।

वह आयु भी जब उसने भोग ली तो यमदूत दोबारा आए। ययाति फिर गिड़गिड़ाया। अभी भी उसकी अनेकों कामनाएँ शेष थीं। फिर किसी और ने अपनी आयु उसे दे दी। ऐसा हजार वर्ष तक होता रहा, परंतु तब भी उसके मन की कामनाएँ कभी शांत नहीं हो पाईं। अंततः वह विक्षिप्त की तरह हो गया और बोला—"घी की आहुतियाँ डालने से यज्ञ की अग्नि कभी शांत नहीं होती, बल्कि और भड़कती है। इसी प्रकार कामनाओं को तृप्त करने के प्रयास से वे कभी शांत नहीं होतीं, बल्कि निरंतर बढ़ती ही जाती हैं।"

हमारा मन भी इसी प्रकार रजोगुण के प्रभाव में आकर हमें लालसाओं में भटकाता है, उनकी तीव्रता के अनुसार कर्मों में, प्रवृत्तियों में निरत करता है, हम उन्हीं आकांक्षाओं से घिर जाते हैं और उनके पूरा न हो पाने पर विक्षोभ व अशांति को अपने जीवन का सत्य मान बैठते हैं। रजोगुण से पार जाना हो तो लालसाओं के उठते ही उन्हें नियंत्रित कर लेना श्रेष्ठ है अन्यथा बाद में बहुत देर हो जाती है। व्यक्ति विक्षिप्तता की हदें पार कर बैठता है। शांति को पाना है तो अशांति की राहों को ठुकराना हमें सीखना होगा। ❑

एक राजा ने राजगुरु की तलाश आरंभ की। उन्होंने घोषणा करा दी कि जो भी विद्वान राजगुरु बनने की आकांक्षा रखते हैं, उन्हें राजा की ओर से निःशुल्क भूमि दी जाएगी। जो सबसे श्रेष्ठ आश्रम बनाएगा, उसे ही राजगुरु घोषित किया जाएगा। राजगुरु बनने की आकांक्षा से प्रेरित होकर अनेक व्यक्ति आए और दूसरों की तुलना में स्वयं का बड़ा आश्रम बनाने की प्रतिस्पर्द्धा में लग गए। राजा कुछ समय पश्चात आश्रमों की प्रगति का अवलोकन करने निकले। उन्होंने देखा कि सभी विद्वान एकदूसरे के साथ प्रतिस्पर्द्धा में निरत हो गए हैं।

उन्हीं में एक विद्वान ऐसे भी थे, जो किसी प्रतिस्पर्द्धा में नहीं लगे थे, वरन शांत चित्त होकर ध्यान-साधना में निमग्न थे। राजा ने उनसे पूछा—"मान्यवर! आपने आश्रम का निर्माणकार्य अभी तक शुरू क्यों नहीं किया?" उन्होंने उत्तर दिया—"मेरा आश्रम तो बहुत पहले ही बनकर तैयार हो गया है। यह सारा संसार भगवान का आश्रम है, दीवारें खींचकर उसकी विशालता को क्यों घटाऊँ।" उनका उत्तर सुनकर राजा श्रद्धावनत् हो गया और उसने उन्हें अपना गुरु मान लिया।

आत्मविश्वास से करें भय को पराश्त

एक अनजाना भय हर व्यक्ति के मन में सदा बना रहता है कि पता नहीं क्या होगा? हम अक्सर अपने साथ कोई-न-कोई डर लिए हुए चलते हैं, जैसे—किसी काम को शुरू करने का डर, किसी काम को न कर पाने का डर, रिश्ते टूटने का डर, नौकरी छूट जाने का डर, आलोचना का डर, असफलता का डर आदि। ये कई तरह के डर हमें अपने सुरक्षित दायरे से बाहर नहीं निकलने देते। यदि हमें अपनी सीमा से बाहर छलाँग लगानी है तो हमें अपने डर को बाहर निकालना होगा।

डर यानी फीयर (एफ.ई.ए.आर.) की एक बहुत ही सुंदर परिभाषा है—फॉल्स एविडेन्स अपीयरिंग रियल। सामान्य शब्दों में इसे कह सकते हैं—फीयर यानी वे झूठ, जो हमें सच लगते हैं। वास्तव में हमारे अधिकतर डर काल्पनिक ही होते हैं और मन में इतनी गहरी पैठ बना लेते हैं कि वे हमें सच प्रतीत होने लगते हैं। इसलिए व्यक्ति का यदि अपने काल्पनिक डर पर नियंत्रण होगा, तो वह अपने डर पर भी नियंत्रण कर सकेगा। इसे नियंत्रित करने के लिए सबसे पहले यह जानें कि ऐसा कौन-सा कार्य है, जिसे करने से हमें बार-बार डर लगता है, उसे सबसे पहले कागज पर लिखें। डर की वजह क्या है? यह भी लिखें। इसके बाद एक-एक करके उनका विश्लेषण करें।

'लोग क्या कहेंगे'—अक्सर इस बात का डर भी लोगों के मन में बना रहता है, जो कि निरर्थक है, क्योंकि अन्य लोग सपनों को पूरा करने में मदद नहीं करते। प्रसिद्ध लेखक अंबरोज रेडमून का कहना है कि डर को खतम करना साहस नहीं है, बल्कि इस बात को तय करने में साहस है कि आपके लिए डर से ज्यादा दूसरी चीजें महत्त्वपूर्ण हैं।

कई लोग अपने डर को साथ लिए रहते हैं, क्योंकि वे कोई जोखिम नहीं उठाना चाहते और उससे संबंधित अन्य समस्याओं से घिरना नहीं चाहते, और कई लोग अपने डर का सामना करने के लिए टी.वी./ इंटरनेट, धूम्रपान, एल्कोहल, ज्यादा मात्रा में खाना आदि में भी अपना समय लगा देते हैं। लेकिन डर का सामना करने के लिए डर से लड़ना, जूझना होता है, न कि उससे बचना, भले ही इसकी शुरुआत धीरे-धीरे ही की जाए।

जिस तरह डरना हमारी आदत में शामिल हो गया है, उसी तरह अगर हममें साहस की कमी है, तो इसे अपने अंदर पैदा करना चाहिए। साहस को पैदा करना भी एक व्यायाम के अभ्यास की तरह होता है। जैसे—पहले दिन व्यायाम करने में लोग जल्दी थक जाते हैं, लेकिन दसवें दिन वे व्यायाम अधिक सरलता से कर लेते हैं। इसी तरह साहस का अभ्यास करने में पहले

आत्मविश्वास में वह अद्भुत शक्ति है, जिससे मनुष्य हजारों विपत्तियों का अकेले ही सामना कर सकता है। मनुष्य की सबसे बड़ी पूँजी और उसका सबसे बड़ा मित्र आत्मविश्वास ही है।

दिन किसी काम को करने में कम साहस होता है, लेकिन धीरे-धीरे काम करने का साहस बढ़ता जाता है और फिर एक दिन हमारे अंदर उस काम को करने के लिए भरपूर साहस होता है।

जीवन में कदम-कदम पर मिलने वाली असफलताएँ मन में इतनी गहराई तक प्रवेश कर जाती हैं कि किसी भी कार्य की शुरुआत में ही हमें उससे मिलने वाली असफलता का डर भी होता है, लेकिन इसे ज्ञान और कौशल से ही दूर किया जा सकता है। हम जितना डर का सामना करेंगे, उतनी ही हमारी अज्ञानता दूर होगी। जब गलतियाँ कम होंगी तो आत्मविश्वास बढ़ता जाएगा और उतना ही असफलता का डर भी कम होगा। यही निर्भयता का मूलमंत्र है। ❑

सीय राममय सब जग जानी

ईश्वर के नाम अनेक हैं, रूप अनेक हैं, पर वह है एक ही। ऋग्वेद—1/164/46 ने भी इसका उद्घोष करते हुए कहा है—

एकं सद्विप्राः बहुधा वदन्ति।

अर्थात—सत्य एक ही है, पर विद्वत्जन उसे ही विविध नामों से पुकारते हैं। इस प्रकार ईश्वर, अल्लाह, गॉड, प्रभु, परमेश्वर, परमात्मा, परब्रह्म, सत्य श्रीअकाल, ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि सब उसी एक ब्रह्म के विविध नाम-रूप हैं। साकार व निराकार रूप में भी वह एक ही है। एकमात्र ब्रह्म ही इस अखिल ब्रह्मांड के स्वामी हैं। यह संपूर्ण सृष्टि उसी एक ब्रह्म की स्फुरणा मात्र है। इस कायनात के कण-कण में उसी ब्रह्म की सत्ता समायी हुई है। ईशावास्योपनिषद् के प्रथम मंत्र में भी इसी बात का उद्घोष है—

ॐ ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।

अर्थात—इस अखिल ब्रह्मांड में जो कुछ भी जड़-चेतन है, वह सब ईश्वर से व्याप्त है। सर्वज्ञ, सर्वव्यापी व सर्वशक्तिमान ईश्वर की अनुभूति समाधि की परम अवस्था में कोटिशः संतों, साधकों व योगियों ने की है। गोस्वामी तुलसीदास जी ईश्वर के उसी व्यापक स्वरूप की अनुभूति करते हुए रामचरितमानस में कह रहे हैं—

बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना।
कर बिनु करम करइ बिधि नाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी।
बिनु बानी बकता बड़ जोगी॥
तन बिनु परस नयन बिनु देखा।
ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा॥
असि सब भाँति अलौकिक करनी।
महिमा जासु जाइ नहिं बरनी॥

अर्थात—वह (ब्रह्म) बिना ही पैरों के चलता है, बिना ही कानों के सुनता है, बिना ही हाथों के नाना प्रकार के काम करता है, बिना मुँह (जिह्वा) के ही सारे रसों का आनंद लेता है और बिना वाणी के बहुत योग्य वक्ता है। वह बिना शरीर (त्वचा) के स्पर्श करता है, बिना आँखों के देखता है और बिना नाक के सब गंधों को ग्रहण करता (सूँघता) है। उस ब्रह्म की करनी सभी प्रकार से ऐसी अलौकिक है कि उसकी महिमा कही नहीं जा सकती।

ईशावास्योपनिषद् के पाँचवें मंत्र में परब्रह्म परमेश्वर की महिमा का वर्णन कुछ इस प्रकार है—

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः॥

अर्थात—वह परमात्मा चलता है और वह नहीं भी चलता है। वह दूर है और वह निकट भी है। वह जीव-जगत आदि के भीतर भी है और इन सबके बाहर भी।

अतः वे परब्रह्म परमेश्वर चलते भी हैं और नहीं भी चलते हैं। एक ही काल में परस्पर विरोधी भाव, गुण तथा क्रिया जिनमें रह सकती है, वे ही तो ईश्वर हैं। यह उनकी अचिंत्य शक्ति की महिमा ही तो है। भगवान अपने दिव्य परमधाम में और लीलाधाम में अपने प्रिय भक्तों को सुख पहुँचाने के लिए सगुण-साकार रूप में प्रकट होकर लीला किया करते हैं, यही उनका चलना है, और निर्गुण-निराकार रूप से जो सदा-सर्वदा अचल हैं, यही उनका न चलना है। इसी प्रकार वे श्रद्धा-प्रेम से रहित मनुष्यों को भी दर्शन नहीं देते, अतः उनके लिए तो वे दूर से भी दूर हैं, और प्रेम की पुकार सुनते ही वे अपने प्रेमी भक्तों के सामने जहाँ चाहें, जब चाहें—उसी क्षण प्रकट हो जाते हैं। अतः उनके लिए तो वे समीप से भी समीप हैं।

वे सदा-सर्वत्र परिपूर्ण हैं, इसलिए दूर-से-दूर भी वे ही हैं और समीप-से-समीप भी वे ही हैं। वे सर्वव्यापी हैं, क्योंकि ऐसा कोई स्थान ही नहीं है, जहाँ वे न हों। सबके अंतर्यामी होने के कारण वे अत्यंत समीप भी हैं, पर जो अज्ञानी लोग उन्हें इस रूप में नहीं पहचानते, उनके लिए तो वे सदा दूर और बहुत दूर ही बने रहते हैं। वस्तुतः वे इस समस्त जगत के परम आधार हैं और परम कारण भी वे ही हैं। अस्तु बाहर-भीतर, सर्वत्र वे ही तो परिपूर्ण हैं। ईश्वर के स्वरूप को प्रकाशित करते हुए महर्षि पतंजलि योगसूत्र, 1/24 में कह रहे हैं—

क्लेश कर्मविपाकाशयैर परामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः।

अर्थात—क्लेश, कर्म, विपाक और आशय—इन चारों से जो परे है तथा जो समस्त पुरुषों से उत्तम है, वह ईश्वर है।

क्लेश पाँच हैं—अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश। ईश्वर इन पंचक्लेशों से मुक्त हैं। पुण्य, पाप, पुण्य और पाप मिश्रित तथा पुण्य-पाप से रहित—ये कर्म के चार प्रकार हैं। ईश्वर इन सभी कर्मों से भी मुक्त हैं। कर्म के फल का नाम 'विपाक' है और कर्म संस्कारों के समुदाय का नाम 'आशय' है। समस्त जीवों का इन चारों से अनादि संबंध है। हाँ—मुक्त हो जाने पर मुक्तपुरुषों को इनसे संबंध अवश्य नहीं रहता, पर मुक्त होने से पूर्व तो संबंध था ही, पर ईश्वर का तो कभी भी इनसे न संबंध था, न है और न ही होने वाला है। इस कारण उन मुक्तपुरुषों से भी जो विशेष हैं, वे ही ईश्वर हैं। जब युद्धभूमि कुरुक्षेत्र में अर्जुन ने कहा—हे परमेश्वर! आपके ज्ञान, ऐश्वर्य, शक्ति, बल और तेज से युक्त रूप का दर्शन करना चाहता हूँ, तब भक्तवत्सल भगवान योगेश्वर श्रीकृष्ण ने भी उन्हें निराश नहीं किया। गीता—11/10,11,12,15 में भगवान ने अपने दिव्यस्वरूप को प्रकट किया—

अनेकवक्त्रनयनमनेकाद्भुतदर्शनम्।
अनेकदिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधम्॥
दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम्।
सर्वाश्चर्यमयं देवमनन्तं विश्वतोमुखम्॥
दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता।
यदि भाः सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः॥
पश्यामि देवांस्तव देव देहे
सर्वांस्तथा भूतविशेषसङ्घान्।
ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थ-
मृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान्॥

अर्थात—अनेक मुख और नेत्रों से युक्त, अनेक अद्भुत दर्शनों वाले, बहुत से दिव्य आभूषणों से युक्त और बहुत से दिव्य शस्त्रों को हाथों में उठाए हुए, दिव्यमाला और वस्त्रों को धारण किए हुए और दिव्य गंध का सारे शरीर में लेप किए हुए, सब प्रकार के आश्चर्यों से युक्त, सीमा रहित और सब ओर मुख किए हुए विराटस्वरूप परमदेव परमेश्वर को अर्जुन ने देखा। आकाश में हजार सूर्यों के एक साथ उदय होने से उत्पन्न जो प्रकाश हो, वह भी उस विश्वरूप परमात्मा के प्रकाश के सदृश कदाचित् ही हो। अर्जुन बोले—"हे देव! मैं आपके शरीर में संपूर्ण देवों को तथा अनेक भूतों के समुदायों को, ब्रह्मा को, महादेव को और संपूर्ण ऋषियों को भी देखता हूँ।

"हे संपूर्ण विश्व के स्वामिन्! आपको अनेक भुजा, पेट, मुख और नेत्रों से युक्त तथा सब ओर से अनंत रूपों वाला देखता हूँ। हे विश्वरूप! मैं आपके न तो अंत को देखता हूँ, न मध्य को और न ही आदि को।" भगवान के इस तेजोमय दिव्यरूप को देखकर अर्जुन का रोम-रोम पुलकित हो उठा। उनकी आत्मा ब्रह्मानंद में विलीन हो गई। शरीर के अंग-अंग आनंद में थिरकने लगे। यह आनंद, ब्रह्मानंद, यह पुलकन, यह दिव्यानुभूति हमें भी क्यों न होगी। बस, आवश्यकता है ईश्वर के चरणों में संपूर्ण समर्पण करने की।

विश्वास कीजिए, यह सत्य और हजार बार सत्य है कि प्रभु परम दयालु हैं, करुणानिधान हैं,

विषय-भोग की कामना विषयों का उपभोग करने से कभी शांत नहीं होती। घी की आहुति डालने से अधिक प्रज्वलित होने वाली आग की भाँति यह कामना और बढ़ जाती है।

दीनबंधु हैं। वे एक-न-एक दिन अवश्य ही हमारी आकुल पुकार सुनकर दृश्य-अदृश्य रूप में, दिव्य प्रेरणा बनकर हमारे अंतस् में उतरेंगे। अस्तु हम हमेशा ब्रह्मभाव में रहते हुए ब्रह्म के विराटस्वरूप का चिंतन करते रहें, दर्शन करते रहें, अनुभूति करते रहें। जो सचमुच परमात्मा के इस विराट स्वरूप को समझ लेता है, पहचान लेता है, मान लेता है; वह कैसे किससे घृणा या द्वेष कर सकता है। प्रभु प्रेम की इसी पराकाष्ठा में प्रभु, भक्त के हृदयासन पर आ विराजते हैं, तब हर पल ब्रह्मानुभूति करता हुआ, सर्वत्र, सब में अपने प्रभु को देखता हुआ भक्त मन-ही-मन सब को प्रणाम करता रहता है और संत तुलसीदास जी की तरह हृदय कह उठता है—

सीय राममय सब जग जानी।
करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥ ❑

तुलना न करें, लक्ष्योन्मुख जीवन जिएँ

समय के साथ हमारी जिंदगी की रफ्तार भी बदलती रहती है। कभी ऐसी स्थिति भी आती है, जब हम पहले की रफ्तार के साथ दौड़ नहीं पाते और कभी ऐसी स्थिति आती है कि हम उम्मीद से अधिक तेज रफ्तार से आगे बढ़ते जाते हैं। कभी हमारे साथ चलने वाले लोग बहुत पिछड़ जाते हैं तो कभी हम उनके साथ चलने में बहुत पीछे हो जाते हैं। जब ऐसी स्थिति आती है कि हम अपने साथ चलने वालों की गति के साथ आगे नहीं बढ़ पाते, तो उन्हें आगे बढ़ते देखकर मन बहुत परेशान होता है।

ऐसे में याद रखना चाहिए कि हर व्यक्ति की अपनी क्षमताएँ व अपने हालात यानी परिस्थितियाँ होती हैं। न ही हम अपनी परिस्थितियों से भाग सकते हैं और न ही हर तरह की दौड़ में शामिल हो सकते हैं। हम दूसरों से अपनी तुलना करते हैं और सदैव उनसे आगे निकलने की होड़ में लगे रहते हैं। पीछे रह जाने का दुःख भी व्यक्ति को परेशान कर देता है, लेकिन इस तरह आगे बढ़ने की हमारी कोशिश, कई उम्मीदों का बोझ साथ लिए चलती है और जिस यात्रा में बोझ जितना ज्यादा होता है, वहाँ चाल उतनी ही धीमी हो जाती है।

खेल दुनिया के ऐसे कई उदाहरण हैं, जब अच्छे-से-अच्छे खिलाड़ी भी अपने जीवन के महत्त्वपूर्ण पलों में किसी कारण से अपना बेहतर नहीं दे पाए। ऐसी स्थिति में भी उन महान खिलाड़ियों ने हार नहीं मानी और दूसरों को आगे निकलते हुए देखकर भी स्वयं का खेलना बंद नहीं किया। धीमी गति से ही सही, लेकिन उन्होंने अंततः फिनिशिंग लाइन को पार करके दुनिया को दिखाया कि वे अभी भी श्रेष्ठतम हैं।

सन् 1984 में स्विट्जरलैंड की धाविका गैब्रिएला ऐंडर्सन ने ऐसी ही एक दौड़ को मुश्किल हालातों में पार किया था। हुआ यह था कि ओलंपिक मैराथन की दौड़ के समय उनके शरीर में पानी की कमी हो गई। जिससे उन्हें यह पता चल गया कि वे सबसे आगे नहीं निकल सकतीं। तब भी उन्होंने दौड़ को पूरा करके दिखाया। उनकी जीवट की सभी लोगों ने बहुत सराहना की।

जीवन में रुकावटें कभी भी आ सकती हैं। सब कुछ ठीक-ठाक होने पर भी कभी-कभी हमें अपने लक्ष्यों को टालना पड़ जाता है, पर दूसरों के साथ तुलना करते हुए जीना हमारी वापसी को मुश्किल बना देता है; क्योंकि दूसरों के जैसा होने की कोशिश हमें अपने जैसा नहीं रहने देती और इसके कारण हम अपने समय और संसाधन का ही नुकसान करते हैं।

प्रसिद्ध उद्यमी और कोच जॉन बिनो का कहना है कि 'हमारी व्यवस्था 100 में से केवल एक को ही विजेता बनाती है। इसमें से 99 हमेशा हारते ही हैं। जबकि हर व्यक्ति किसी-न-किसी दृष्टि से खास होता है।' इसलिए हमारा ध्यान हार या जीत पर नहीं होना चाहिए, बल्कि हमें हर कार्य में अपना सौ प्रतिशत देना चाहिए। जिंदगी वैसे भी चलते रहने का नाम है, दूसरों की देखा-देखी दौड़ने का नाम नहीं। इसलिए दूसरों से अपनी तुलना बंद करें और अपनी गति से अपनी मंजिल तय करें।

स्वयं को, हालातों को या दूसरों को कोसने में समय व्यर्थ न करें, बल्कि स्वयं पर भरोसा रखें। दूसरे क्या सोचेंगे, यह सोचने के बजाय जो बेहतर किया जा सकता है, उस पर ध्यान दें। जिंदगी का भी आनंद लें, धीमी गति से ही सही, हर दिन आगे बढ़ने की कोशिश करें और सदैव नया सीखने के लिए तैयार रहें। हर समय स्वयं को समय की डेडलाइन पूरी करने में न उलझाएँ, बल्कि अपनी प्रगति की रिपोर्ट अपने मानकों के आधार पर बनाएँ। हर समय दौड़ते रहना भी व्यक्ति को जल्दी थका देता है। इसलिए जिंदगी के हर छोटे-बड़े मोड़ पर एक बार रुककर अपने लक्ष्य की ओर जरूर देखें और समीक्षा करें कि हमारी यात्रा सही चल रही है या नहीं? जरूरत पड़े तो नए लक्ष्य बनाएँ और साथ ही नई योजनाएँ भी। हम सदैव नए ढंग से काम करने के लिए तैयार रहें तो हमारा हर दिन बेहतर सिद्ध होगा। ❑

जीवन के देवता को आओ तनिक सँवारें

(गतांक से आगे)

विगत अंक में आपने पढ़ा कि परमपूज्य गुरुदेव अपने विशिष्ट उद्बोधन में प्रत्येक व्यक्ति को चेताते हैं कि हमें मनुष्य का जीवन एक विशिष्ट उद्देश्य की प्राप्ति के लिए मिला है। हममें से प्रत्येक के सामने श्रेय और प्रेय के मार्ग सदा उपस्थित रहते हैं। एक पथ कामनाओं की कभी न तृप्त होने वाली राह पर ले जाता है तो दूसरा आत्मिक तुष्टि के पथ पर ले चलता है। इन दोनों के मध्य सदा द्वंद्व चलता रहता है। यदि हमें अपने जीवन में एक श्रेष्ठ उद्देश्य की ओर अग्रसर होना है तो हमें अपने दृष्टिकोण को परिवर्तित करना सीखना होगा। जो दृष्टिकोण को परिष्कृत कर लेते हैं, वे कम संसाधनों में भी एक उत्कृष्ट जीवन जीकर के दिखाते हैं और आने वाली पीढ़ियों के लिए एक अतुलनीय विरासत छोड़कर के जाते हैं। आइए हृदयंगम करते हैं उनकी अमृतवाणी को.....

दृष्टिकोण बदलने से मिलते हैं भगवान

लेकिन मित्रो! क्या फरक पड़ गया? फरक यह पड़ गया कि मेरी विचारणाओं, मेरी आकांक्षाओं, मेरी इच्छाओं ने दिशाएँ बदल दीं। दिशाएँ बदलकर जब मैंने देखा तो मुझे यह मालूम पड़ा कि दुनिया में कोई दुःख नहीं है। दुनिया बड़ी सुखी है। इसमें केवल स्वर्ग भरा हुआ है और दुनिया में केवल आनंद है। दुनिया में केवल संतोष है और दुनिया में केवल शांति है। मैंने केवल शांति को देखा, अशांति को नहीं। मैंने दुनिया में सुख को देखा, दुःख को नहीं। दुनिया में मैंने संतोष को देखा, असंतोष को नहीं।

मेरी आँखों में अलग तरह का चश्मा लगा दिया गया, तो मैंने सारी-की-सारी दुनिया को पीले रंग की तरह देखा और मुझे यह मालूम पड़ा कि सारी दुनिया पीले रंग की है। अपना दृष्टिकोण बदल लेने के बाद आदमी न जाने कितना खुश, कितना प्रसन्न और कितना संतुष्ट बन सकता है। जिस आदमी ने अपनी दिशाएँ बदल दीं और जिस आदमी ने अपनी इच्छाएँ बदल दीं, उसके काम करने का ढंग ऐसा बेहतरीन हो जाता है कि उसके काम करने के ढंग को देख करके भगवान खिंचा हुआ चला आता है।

मित्रो! भगवान कहता है कि मेरे पास मदद बहुत दिनों से सुरक्षित रखी हुई है और मैं मदद दूँगा। अर्जुन जब भगवान का काम करने के लिए खड़ा हुआ, तो भगवान ने कहा—"मैं तेरे घोड़े चलाऊँगा और जब समुद्र मंथन का महाकार्य हुआ और देवताओं ने इसे अपने जिम्मे लिया और मंदराचल पर्वत जमीन के नीचे खिसकने लगा, तो भगवान ने कहा—मैं कछुए का रूप बना करके अभी आता हूँ और मंदराचल पहाड़ को अपनी पीठ पर रखूँगा और तुम्हारे समुद्रमंथन की प्रक्रिया को पूरा करूँगा। भगवान बुद्ध बढ़ती हुई हिंसा को दूर करने के लिए कटिबद्ध हो गए थे। उन्होंने कहा—दुनिया में पाप और अनाचार, जीवों के प्रति हिंसा ज्यादा फैली हुई है, मैं इसको दूर करूँगा। मुझे सामान की जरूरत है और मुझे सहकारियों-सहायकों की जरूरत है। आवश्यकता इस बात की हुई कि पैसा पास में नहीं है। अपनी सेना कहाँ से खड़ी करेंगे? खिलाएँगे कहाँ से? ऐसे आदमी आएँगे, तो मुश्किल पड़ जाएगी। काम कैसे चलेगा?

भगवान करते हैं इनसान का सहयोग

बुद्ध विचार करने लगे कि वैदिक हिंसा और सारे विश्व में संव्याप्त पाप का मुकाबला करने के लिए खड़ा होऊँगा, तो मेरे पास साधन कहाँ हैं? साधन कहाँ से आएँगे? एक छोकरा भागता हुआ चला आया। उसने कहा—"पिताजी! मेरा सारा-का-सारा धन आपके चरणों पर निछावर है। उसका नाम था—अशोक। भगवान अशोक के रूप में आए और अशोक के रूप में आ करके कहा—"हम तेरी मदद करेंगे और तेरे महान कार्य को संपन्न कराएँगे।" अशोक बुद्ध के यहाँ आए और बुद्ध के ढाई लाख मनुष्यों की सेवा के लिए खाने-पीने का इंतजाम हो गया। ठहरने का इंतजाम हो गया और सारे एशिया में और सारे विश्व में बुद्ध की सेना—"**बुद्धं शरणं गच्छामि,**""**संघं शरणं गच्छामि,**""**धम्मं शरणं गच्छामि**" का संदेश गुंजाती हुई निकल पड़ी और सारे एशिया को और जहाँ तक उस जमाने के लोग पहुँच सकते थे, उस सारे-के-सारे इलाकों को बुद्धवाद से आच्छादित कर दिया। इसके लिए करोड़ों रुपयों की जरूरत पड़ी होगी और अशोक जैसे न जाने कितने व्यक्ति उनकी सहायता करने के लिए चले आए।

मित्रो! भगवान मनुष्य की सहायता नहीं करता है क्या? हाँ, करता है। भगवान ने सहायता की थी एक छोटे से नाचीज जानवर की। एक हाथी जोर से एक बार चिल्लाया। उसने कहा—भगवन्! मैं पानी में घिसटता हुआ चला जा रहा हूँ और मुझे ग्राह घसीटता हुआ चला जा रहा है। तबीयत के साथ, मन के साथ, अंतरात्मा के साथ गज ने भगवान को पुकारा और गज की सहायता करने के लिए भगवान दौड़े आए। भगवान पर अटूट विश्वास करने वाली, भगवान की राहों पर चलने वाली, भगवान को प्यार करने वाली और भगवान के संकेत और आदर्शों पर चलने वाली, भगवान के इशारों पर नाचने वाली मीरा को जब जहर पिलाने की तैयारियाँ की गईं और कहा गया कि मीरा को जहर पिला दिया जाएगा तो भगवान आए। उन्होंने कहा—मेरी नन्हीं-सी मीरा जहर कैसे पी सकती है? उसका कलेजा जल जाएगा, उसकी जीभ जल जाएगी, उसका गला जल जाएगा। अपनी मीरा को मैं कैसे जल जाने दूँगा? फिर जहर कौन पिएगा? भगवान ने कहा—जहर पीने के लिए मैं मौजूद हूँ। मीरा पानी पिएगी और जहर मैं पियूँगा। जहर भगवान ने पिया और पानी मीरा ने पिया।

भक्त के लिए जहर भी पीते हैं भगवान

मित्रो! मीरा को काटने के लिए साँप भेजे गए। जहरीले साँप, कोबरा साँप—इसलिए भेजे गए कि मीरा को ये काट खाएँ और मीरा को मार डालें। मीरा को काट खाने के लिए साँप आए, तो भगवान ने कहा—मेरे इशारे पर चलने वाली और मेरे आदर्शों और मेरे संकेतों को पूरा करने वाली मीरा किस तरीके से साँप का जहर बरदाश्त करेगी। साँप का जहर तो बहुत खतरनाक होता है और आदमी की जान ले लेता है। मेरी मीरा की जान ले ली जाएगी, तो मेरे लिए मुश्किल पड़ेगी। और मेरी प्यारी लड़की कहाँ से मिलेगी और मेरे साथ नाचने का दावा कौन करेगा? मीरा को नहीं मारा जाना चाहिए और मीरा को बचाया जाना चाहिए। साँप काटने के लिए आया और भगवान ने अपनी उँगलियाँ साँप के मुँह में ठूँस दीं। उन्होंने कहा तू इन्हें काट। ये काटने लायक थीं। मीरा को मत काटना। मीरा को साँप ने काटा। सिर्फ पानी का-खून का एक बूँद लेकर रह गया और जहर भगवान की उँगलियों में चला गया। मीरा बच गई।

अभागे नहीं, भगवान की कृपा के अधिकारी बनें

मित्रो! भगवान ने हमेशा मनुष्य की हिमायत और सिफारिश की। भगवान ने हमेशा मनुष्य की सहायता की। प्यासा भगवान इस बात के लिए बैठा हुआ है कि कोई आदमी सामने आए, जिसके ऊपर हम अपनी सहायता बिखेर दें। लेकिन हम कंजूस मनुष्य हैं कि अपना मुँह नीचे की ओर किए हुए हैं। अमृत की वर्षा रात भर होती रही और हमारा मुँह ऊपर की ओर न खुल सका। ऊपर की ओर, भगवान की ओर हमारा मुँह खुला होता, तो अमृत हमारे मुँह में आया होता और हम अजर-अमर हो गए होते। वर्षा हुई भगवान का प्यार बिखरता रहा। पीने वालों ने पिया। लेने वालों ने लिया और इकट्ठा करने वालों ने इकट्ठा किया और हम अभागे मनुष्य सीप और घोंघे इकट्ठे करते रहे।

जो गोताखोर अपनी जिंदगी को जोखिम में डालकर नीचे समुद्र में उतरते चले गए, वो मोती इकट्ठे करके लाए और हम समुद्र के किनारे बैठे हुए कमजोर, कंजूस और कृपण मनुष्य, लोभी और स्वार्थी मनुष्य केवल इस ख्वाब में बैठे रहे कि भगवान कभी हमारे चक्कर में फँस जाएगा और हम भगवान का मलीदा बनाएँगे। मछली पकड़ने वाले आते हैं और एक लंबी वाली रस्सी लेते हैं और उसमें आटे की गोलियाँ लगा देते हैं और पानी में

फेंक देते हैं। इसलिए फेंक देते हैं कि कोई लंबी वाली मछली हाथ में आ जाए, तब उसको पकड़ लिया जाए। फिर उसका ऐसा मलीदा बनाया जाए, उसके पेट में ऐसे मसाले भरे जाएँ कि जीभ कहे कि हाँ, कोई खाने वाला, पकड़ने वाला मिला था। हम भी ऐसे ही मछली को आटे की गोलियों से, चिड़िया को बहेलिये के तरीके से पकड़ने के लिए विभिन्न तरह की गोलियाँ इकट्ठी कर लेते हैं। चिड़िया फँस जाए, उसके पंख फाड़े जाएँ और उसका शोरबा बनाया जाए।

मित्रो! हम भी कुछ ऐसा ही धंधा किया करते हैं। लकड़ी की गोलियाँ खरीद लाते हैं और धागे में पिरो लेते हैं और मछली पकड़ने वाले के तरीके से संतोषी माता को पकड़ने के लिए फेंकते रहते हैं कि संतोषी माता चक्कर में आ जाएँ, तो उनका पेट फाड़ें कि उनको नानी याद आ जाए। हनुमान जी को पकड़ने के लिए भी हम ऐसा जाल बिछाते रहते हैं कि हनुमान जी आ जाएँ, कोई गणेश जी आ जाएँ, कोई अमुक देवता आ जाएँ और ऐसे फँस जाएँ, तो हम उनका ऐसा मलीदा बनाएँ, ऐसा कबाब बनाएँ कि उनके बच्चों को याद आ जाए कि हाँ कोई चेला मिला था। हमारी तरकीबें और हमारे ढंग, हमारी नीति और हमारे उद्देश्य, घटिया वाले उद्देश्य और घटिया वाले मनुष्य, घटिया वाले व्यक्ति—क्या भगवान से प्यार पाने के अधिकारी बन सकते हैं? नहीं बन सकते हैं।

दृष्टिकोण बदलें तो बदलेगा जीवन

मित्रो! हमको अपने दृष्टिकोणों को परिष्कृत करना पड़ेगा। जिस दिन हम अपने दृष्टिकोण को परिष्कृत करेंगे, उस दिन हमको यह मालूम पड़ेगा कि हम बहुत मालदार आदमी हैं और हम गरीब आदमी नहीं हैं। आपकी गरीबी उसी दिन गायब हो जाएगी, जिस दिन आपको अपने जीवन में यह विश्वास जम जाएगा कि हम श्रेय मार्ग पर चलने वाले हैं और श्रेय मार्ग पर चलने वाला गरीबी का जीवन अनुभव नहीं कर सकता। स्वामी रामतीर्थ थे, जो अपने आप को रामबादशाह समझते थे। रामबादशाह कैसे थे? लँगोटी लगाने वाले बादशाह थे। क्या लँगोटी लगाने वाले भी बादशाह होते हैं? हाँ होते हैं। लँगोटी लगाने वाले बादशाह इसलिए होते हैं, लँगोटी लगाने वाले फकीर होते हैं कि उनकी नीयत और उनका मन उस बुढ़िया के तरीके से होता है, जो अपने बच्चों को मिठाई खिलाना चाहती है, चीजें खिलाना चाहती है, मेवा खिलाना चाहती है और खुद रूखी रोटी खा करके खुश हो जाती है और खुश हो करके काम चला लेती है। छोटी चीजों से काम चला लेती है। ऐसा उसका मन बन जाता है। वास्तव में वे गरीब नहीं होते।

मित्रो! चाणक्य गरीब नहीं था। गरीब था क्या? हाँ साहब! गरीब था। बेचारा जरा-सी धोती पहनता था। फूस की झोंपड़ी में रहता था। तीन मील पैदल चल करके नंगे पैर जाता था। उस बेचारे के पास साइकिल भी नहीं थी और स्कूटर का भी नंबर नहीं आया था। स्कूटर चार हजार का आता है और अगर चाणक्य नंबर लगाता तो शायद नंबर ही नहीं आता गरीब का। दूसरे लोग अपनी-अपनी लाइन में नाम लिखा लेते और चाणक्य मारा-मारा डोलता। उसके पास स्कूटर भी नहीं था। चाणक्य फकीर था, लेकिन फकीर की ताकत का कोई ठिकाना है? अनाथ लड़का, मुरा और नानकी राम का पाला हुआ वह लड़का चंद्रगुप्त मौर्य बन गया, जिसके सिर पर चाणक्य ने हाथ रख दिया।

संत कभी गरीब नहीं होते

इतिहास की दृष्टि से सारे अखंड भारत का सबसे बड़ा सम्राट बन गया। पहले क्या था, मुझे मालूम नहीं, पर जब मैंने हिस्ट्री पढ़ी, तब मुझे यह मालूम पड़ा कि चंद्रगुप्त मौर्य का शासनकाल इतना बड़ा था कि किसी और के पास इतना बड़ा साम्राज्य नहीं था। गरीब चाणक्य का शिष्य अमीर। अमीर कौन? चंद्रगुप्त मौर्य और कामना पूर्ण करने वाला चाणक्य। चाणक्य के दिमाग में आया कि नालंदा विश्वविद्यालय बनाया जाना चाहिए और सारी फैकल्टीज का समावेश करना चाहिए। उसमें बड़े-से-बड़े प्रोफेसर और बड़े-बड़े वाइस चांसलर दुनिया में से ढूँढ़-ढूँढ़ करके बुलाए जाने चाहिए। बहुत बड़ा काम था और करोड़ों रुपये का था, लेकिन सौ करोड़ रुपया न जाने कहाँ से भागता हुआ चला आया। महात्मा चाणक्य और सम्राट चंद्रगुप्त के इशारे पर नालंदा विश्वविद्यालय बनकर तैयार हो गया।

मित्रो! गुप्त साम्राज्य इतना बड़ा साम्राज्य बनकर तैयार हो गया, जिसका कोई सानी नहीं था। समर्थ गुरु रामदास बहुत गरीब थे? हाँ गरीब थे। अमीर थे? हाँ, इतना अमीर कि कोई ठिकाना नहीं। जंगल में रहने वाले, कुटिया में रहने वाले, फूस की झोंपड़ी में रहने वाले समर्थ गुरु रामदास के जी में आया कि किसी आदमी को जबरदस्त आदमी बनाया जाना चाहिए और हिंदुस्तान को एक शक्तिशाली सत्ता के रूप में पेश

किया जाना चाहिए। एक लड़का आया, जो इधर-से-उधर घूम रहा था। उन्होंने उससे पूछा—क्या नाम है तेरा? शिवाजी। मेरे पाँव तो दबा दे। वह उनके पाँव दबाने लगा। जरा देर पाँव को दबाया, तो उन्होंने कहा—अच्छा तो मैं तुझे बादशाह बना दूँ? भला मैं बादशाह कैसे बन सकता हूँ? मैं तो गाँव का आदमी हूँ, और छोटा हूँ। उन्होंने कहा—मैं तुझे बादशाह बनाऊँगा। बस, उनकी तबीयत आ गई। किसकी आ गई? समर्थ गुरु रामदास की।

मित्रो! समर्थ गुरु रामदास की तबीयत आ गई और उन्होंने उसके सिर पर हाथ रख दिया और वह छत्रपति शिवाजी किलों का स्वामी बन गया। सम्राटों का निर्णय लेने वाला शिवाजी, इतिहास में अजर, अमर रहने वाला शिवाजी बन गया। शिवाजी छत्रपति था, शासक था, राजा था, अमीर था, किले वाला था, हाथी वाला था, और समर्थ गुरु रामदास फूस की झोंपड़ी में रहने वाले थे। फूस की झोंपड़ी को उनके ऊपर किसी ने लादा नहीं था। उन्होंने इच्छा से झोंपड़ी का वरण किया था। उनके ऊपर किसी ने लाद नहीं दिया था कि तुमको यहाँ रहना पड़ेगा। अगर उन्होंने चाहा होता और कहा होता कि शिवाजी तेरे रहने का किला जितना बड़ा है, मेरे लिए उससे बड़ा किला बनवा करके दे। तेरे पास सेना में जितने नौकर हैं, उससे ज्यादा मेरे लिए नौकर रख। शिवाजी की हस्ती थी कि वे यह कहते कि हम आपके लिए नहीं रख पाएँगे।

मित्रो! वे लोग गरीब दिखाई पड़ते हैं। कौन? महापुरुष। महापुरुष इसलिए गरीब दिखाई पड़ते हैं कि अगर वे गरीबी का जीवन नहीं जिएँ, तो तृष्णाएँ उनको ऐसे बुरे तरीके से जकड़ डालेंगी कि उनके पास वक्त नाम की चीज बचेगी नहीं। भावना नाम की चीज बाकी न रह जाए और उनके पास उत्साह नाम की कोई चीज न रह जाए। लगन नाम की कोई चीज न रह जाए। निष्ठा नाम की कोई चीज न रह जाए, केवल ढोंग बाकी रह जाए। शंकर जी के ऊपर पानी चढ़ाकर के चाहे इसे पूरा कर लिया जाए, चाहे संतोषी माता को चना-गुड़ चढ़ा करके पूरा कर लिया जाए। ढोंग बाजीगर भी करता है। आप भी इसे कर लीजिए। आप भी ढोंग कर सकते हैं अगर आपकी इच्छाएँ उस ओर प्रेरित न की गई हों, जिस ओर मेरी इच्छाएँ प्रेरित की गईं। मेरी इच्छाएँ जिस ओर प्रेरित की गईं, तब जो सर्वसाधारण की आकांक्षाएँ होती हैं, उनसे मेरी आकांक्षाओं का तरीका कुछ अलग तरह का हो गया।

मित्रो! एक बार ऐसा हुआ। खलीफा उमर जो थे, उनको तीन दीनार रोज खाने के लिए मिलते थे। उन्होंने अपनी नौकरी तीन दीनार रखी। उन्होंने कहा—हमारी रियाया को जितनी खुराक मिलती है, उतनी खुराक पर हमको भी जिंदा रहना चाहिए। एक दिन उनकी बीबी ने कहा—हजरत! अभी ईद का त्योहार आने वाला है। तो क्या करना चाहिए? ईद के त्योहार में मिठाइयाँ बननी चाहिए, पकौड़ियाँ बननी चाहिए, हलवा बनना चाहिए और पुलाव बनना चाहिए। किसने कहा? उनकी बीबी ने कहा। हजरत ने बहुत लापरवाही से कहा—भाई! तीन दीनार तो मुझे मिलते हैं, उसी में काम चलाओ। एक-दो दिन ऐसा कर लो-फाका कर लो। बीच में खाना बंद कर दो। दूध को जमा कर लो, काम चल जाएगा। उन्होंने कहा—ठीक है। उन्होंने क्या किया कि ईद का त्योहार नजदीक आने लगा। तीन दीनार रोज जो मिलते थे, उसने दो दीनार से गुजारा करना शुरू कर दिया और एक दीनार बचा लिया। एक दीनार के हिसाब से पाँच दिन में पाँच दीनार बच गए। और पाँच दीनार की पकौडियाँ बनाईं, मिठाई बनाई, हलवा बनाया, रबड़ी बनाई और खलीफा के सामने थाली बना करके रखी।

मित्रो! खलीफा बहुत तारीफ करने लगे। उन्होंने कहा—बीबी! तुम तो बहुत बढ़िया हो, तुम तो बहुत अच्छी हो और तुम तो बड़ी नेक हो। तुमको तो खाना बनाना बहुत बढ़िया आता है। खलीफा उमर पत्नी की बहुत तारीफ करने लगे। बीबी ने कहा—बस, इतनी ही बात कही और मेरी खास बात तो आपने कही ही नहीं। तुम्हारी खास बात क्या है? यही कि मैं कितनी किफायतदार हूँ। मैंने दो ही दीनार में पाँच दिन तक काम चलाया और आपको पता भी नहीं चलने दिया। घी भी आपको खिला दिया और रोटी भी घर में बनाती रही। मैंने जरा-सी किफायतशारी की और जरा-सी कम लकड़ी जलाई और जरा से में सारा काम कर लिया और इस तरह एक दीनार की किफायत रोज होने लगी। यह तारीफ आपने नहीं की। उन्होंने कहा—ओ हो! खास तारीफ तो तुम्हारी यही है, मैं तो भूल गया। खास तारीफ तो तुम्हारी यही थी तुमने कम खरच में किस तरीके से काम चला लिया। तुम दो दीनार में काम चला सकती हो। उन्होंने बीबी की पीठ थपथपाई, बहुत प्यार किया और बोले—

बेगम! तुम बहुत अच्छी हो। तुम दो दीनार में काम चला सकती हो।

मित्रो! दूसरा दिन आया और उन्होंने खजांची को बुलाया। उन्होंने कहा—हमारी बेगम बहुत बढ़िया है। हमारी बेगम बहुत किफायतदार है और हमारी बेगम बहुत शरीफ है और हमारी बेगम बहुत बरकतमंद है। उसको यह बात मालूम है कि जिस रियाया का हम पैसा लेते हैं, उसमें से बहुत आदमी गरीब हैं। बहुत से आदमी दुःखी रहते हैं। बहुत से आदमियों को तकलीफ रहती है। इसलिए खलीफा ने कहा—एक दीनार रोज बचाया जाना चाहिए और उन्हीं लोगों के लिए खरच किया जाना चाहिए, जो कि एक दीनार के बिना अपने बच्चों का इलाज कराने में और अपने बच्चों की फीस देने में महरूम हैं। इसलिए एक दीनार कम में हम काम चला सकते हैं। नौकरी में तीन दीनार लेना गलत था। आप ऐसा करना, एक दीनार हमारी तनख्वाह में से कम कर दें और दो दीनार की तनख्वाह खलीफा के लिए भेजी जाया करे। खलीफा उमर को दो दीनार मिलने लगे और एक दीनार काट दिया गया। खलीफा दो दीनार में खुश। दो दीनार में आदमी खुश रह सकता है क्या? हाँ, दो दीनार में आदमी बहुत खुश रह सकता है, अगर आदमी की इच्छाएँ कम हो जाएँ तब। [क्रमशः समापन अगले अंक में]

एक दिन भिक्षु संग्राम ने भगवान बुद्ध से पूछा—"भगवन्! संसार के प्रमाद में पड़े हुए की क्या पहचान है?" भगवान ने तत्काल कोई उत्तर न दिया और बातें करते रहे। दूसरे दिन कुंडिया राज्य की राजकुमारी सुप्पवासा के यहाँ उनका भोजन था। सुप्पवासा सात वर्ष तक गर्भ धारण करने का कष्ट भोग चुकी थी। भगवान बुद्ध की कृपा से ही उसे इस कष्ट से छुटकारा मिला था, इसी प्रसन्नता में वह भिक्षु संघ को भोजन दे रही थी।

जब सुप्पवासा तथागत को भोजन करा रही थी, तब उसका पति नवजात शिशु को गोद में लिए निकट खड़ा था। सात वर्ष तक गर्भ में रहने के कारण वह बालक जन्म से ही विकसित था। दिखने में भी सुंदर था। उसके हँसने और क्रीड़ा करने की गतिविधियाँ बड़ी मनमोहक थीं। वह बार-बार माँ की गोद में जाने के लिए मचल रहा था। भगवान बुद्ध ने मुस्कराते हुए पूछा—"बेटी सुप्पवासा! तुझे ऐसे पुत्र मिलें तो कितने और पुत्रों की कामना तू कर सकती है?" सुप्पवासा ने कहा—"भगवन्! अभी सात बार और इसी तरह गर्भधारण की मेरी कामना है।" भिक्षु संग्राम निकट ही बैठे थे। सुप्पवासा का उत्तर सुन उनको आश्चर्य हुआ कि कल तक जो प्रसव-पीड़ा से व्याकुल थी और उससे मुक्ति का मार्ग ढूँढ़ रही थी, वो आज फिर से पुत्रों की कामना कर रही है। भगवान बुद्ध भिक्षु को देखकर मुस्कराए और बोले—"वत्स! तुम्हारे कल के प्रश्न का यही उत्तर है। मनुष्य एक कष्ट से मुक्त नहीं हो पाता कि वह दूसरी कामना की पूर्ति में आसक्त हो जाता है। इसीलिए वह कभी संसार चक्र से निकल नहीं पाता।"

विश्वविद्यालय परिसर से –155

हर क्षेत्र में शिखरों को छूता विश्वविद्यालय

इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं कि देव संस्कृति के महान आदर्शों, परंपराओं व मूल्यों के सतत संरक्षण व संवर्द्धन के महान उद्देश्यों की पूर्ति के लिए ही देव संस्कृति विश्वविद्यालय की अभिनव स्थापना हुई है। यह एक नूतन सृष्टि है, एक अभिनव स्थापना है व यह इस युग का नालंदा, तक्षशिला विश्वविद्यालय है, जहाँ मनुष्यों को गढ़ने व संस्कारित करने का देव कार्य हिमालयीन ऋषियों के सतत संरक्षण व मार्गदर्शन में अविराम प्रवाहमान है। अस्तु यह ज्ञान की गंगोत्तरी कहा जा सकता है। देव संस्कृति विश्वविद्यालय की प्रत्येक गतिविधियों में एक ओर जहाँ देव संस्कृति की झलक मिलती है तो वहीं दूसरी ओर मूल्य आधारित शिक्षा, शिक्षा के साथ विद्या, गीता–ध्यान की कक्षाएँ, जीवन प्रबंधन एवं वैज्ञानिक अध्यात्मवाद जैसे नूतन पाठ्यक्रम इस विश्वविद्यालय को अन्य विश्वविद्यालयों से अलग करते हुए एक विशेष गौरव बोध कराते हैं।

विगत दिनों विश्वविद्यालय कुछ विशेष संगोष्ठियों, कार्यशालाओं व राष्ट्रीय, अंतरराष्ट्रीय शिक्षण संस्थाओं के साथ हुए कुछ महत्त्वपूर्ण अनुबंधों का साक्षी रहा है। इस क्रम में विगत दिनों राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान एवं देव संस्कृति विश्वविद्यालय के संयुक्त तत्त्वावधान में अनौपचारिक शिक्षण कार्यक्रम का शुभारंभ हुआ। इस अवसर पर मुख्य अतिथि के रूप में अपने विचार व्यक्त करते हुए विश्वविद्यालय के कुलपति श्री शरद पारधी ने कहा कि संस्कृत हमारी संस्कृति की भाषा है। भारत का संपूर्ण आर्ष साहित्य जो समस्त वैश्विक ज्ञान का आधार है, संस्कृत भाषा में ही है। आज ऐसे समय में जब नासा जैसे वैज्ञानिक संस्थान संस्कृत को वैज्ञानिक भाषा एवं कंप्यूटर की भाषा के रूप में देख रहे हैं, तब इस विश्वविद्यालय में अनौपचारिक संस्कृत शिक्षण का शुभारंभ होना निश्चित ही गर्व का विषय है।

इस अवसर पर भाषा विभाग के अध्यक्ष प्रो० राधेश्याम चतुर्वेदी ने कहा कि युवाओं में संस्कार सृजन हेतु यह आवश्यक है कि उन्हें संस्कृत भाषा एवं साहित्य का अध्यापन कराया जाए। राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान एवं देव संस्कृति विश्वविद्यालय के मध्य हुए एक अनुबंध के अनुसार विश्वविद्यालय में अनौपचारिक शिक्षण का एक नियमित केंद्र भी स्थापित किया गया है। इस अवसर पर राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान की शिक्षिका ओमश्री एवं भाषा विभाग के सभी आचार्य उपस्थित रहे।

इन्हीं दिनों विश्वविद्यालय के शिक्षाशास्त्र विभाग एवं फिजिकल एजुकेशन फाउंडेशन के संयुक्त तत्त्वावधान में आयोजित 'फिटनेस फॉर ऑल' कार्यशाला का शुभारंभ विश्वविद्यालय के कुलपति श्री शरद पारधी एवं पेफी के राष्ट्रीय सचिव डॉ० पीयूष जैन, डॉ० अजय मलिक ने दीप प्रज्वलित कर किया। इस अवसर पर डॉ० पीयूष जैन ने कहा कि आज स्वास्थ्य की आवश्यकता हर व्यक्ति व वर्ग को है। यदि हम बिना थकान के दैनिक कार्यों को संपन्न कर पा रहे हैं तो ही हम पूरी तरह से स्वस्थ हैं। स्वस्थ रहने के लिए संतुलित आहार लेना जरूरी है। श्री शरद पारधी जी ने कहा कि शरीरबल, मनोबल, बुद्धिबल, विद्याबल, चरित्रबल, आत्मबल व धनबल आदि सात बल जिसके पास हैं, वह व्यक्ति पूरी तरह से स्वस्थ है। इस अवसर पर कई विशेषज्ञों ने अपनी राय रखी और कई प्रतिभागियों ने शोधपत्र प्रस्तुत किए।

इसी क्रम में विश्वविद्यालय के कंप्यूटर विभाग द्वारा आयोजित टेक्नोफीलिया कार्यक्रम में 160 विद्यार्थियों ने 6 प्रतियोगिताओं में भागीदारी की। इस अवसर पर विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी ने सभी विद्यार्थियों से मूल्यपरक टेक्नोक्रेट बनने का आह्वान किया। उन्होंने कहा कि समसामयिक परिस्थितियाँ चुनौतीपूर्ण हैं, प्रकृति, समाज, वातावरण बहुत ज्यादा प्रदूषित हैं। ऐसे में आपसी प्रेम, सद्भाव और स्नेह ही हम विरासत में अपनी आने वाली पीढ़ी के लिए छोड़ सकते हैं। इस अवसर पर विभाग के वर्ष 2017 का उत्कृष्ट शिक्षक का पुरस्कार श्री चंद्रशेखर पटेल को प्राप्त हुआ। अन्य विद्यार्थियों एवं आचार्यों को भी प्रतिकुलपति जी द्वारा पुरस्कार एवं प्रमाण पत्र वितरित किए गए।

राष्ट्रीय दिवसों को मनाने के क्रम में विश्वविद्यालय के एनीमेशन विभाग द्वारा सोलहवाँ अंतरराष्ट्रीय एनीमेशन दिवस मनाया गया। इसी दिन सन् 2002 में आमिल रेनाल्ड्स द्वारा बनाई गई 'जिओ टुर्फ' नामक एनीमेशन फिल्म द्वारा पहली बार पेरिस में एनीमेशन क्षेत्र की शुरुआत हुई थी। इस अवसर पर प्रतियोगिताओं का आयोजन एवं कलाकृतियों का प्रदर्शन भी किया गया। इसमें विश्वविद्यालय के साथ-साथ हरिद्वार एवं देहरादून से आए विद्यार्थियों ने भी भाग लिया। देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी ने इस अवसर पर एनीमेशन विभाग से पूज्य गुरुदेव द्वारा रचित प्रज्ञा पुराण की कथाओं एवं बाल निर्माण की कहानियों पर एनीमेशन फिल्म बनाकर समस्त विश्व के लिए प्रस्तुत करने को प्रोत्साहित किया।

विगत दिनों देव संस्कृति विश्वविद्यालय एवं शांतिकुंज की टोली के द्वारा बिजनौर जेल में योग पर चार दिवसीय कार्यशाला भी संपन्न हुई। इसमें योगाचार्यों द्वारा स्वस्थ जीवनशैली एवं योगाभ्यास पर विशेष चर्चा की गई। योगाभ्यास से व्यसन मुक्ति के उपाय बताए गए। इस अवसर पर जेल अधीक्षक श्री आर० के० मिश्र, जेलर श्री आकाश शर्मा के साथ विश्वविद्यालय के योगाचार्य डॉ० राकेश वर्मा एवं शांतिकुंज के कार्यकर्त्ता श्री अमरेश राठी का विशेष योगदान रहा।

धर्मनगरी हरिद्वार में पंतद्वीप, हर की पैड़ी पर आयोजित कार्यक्रम 'गंगा उत्सव' में विभिन्न विद्यालयों के साथ-साथ देव संस्कृति विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों ने भी भाग लिया। इस अवसर पर आयोजित क्विज प्रतियोगिता में विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों ने कई उपहार, पुरस्कार प्राप्त किए। प्रस्तुत कार्यक्रम राष्ट्रीय गंगा स्वच्छ मिशन एवं नमामि गंगे अभियान के तहत किए गए थे। सभी प्रतिभागियों ने स्वच्छ भारत अभियान एवं नमामि गंगे योजना में सहयोग करने का संकल्प लिया। इस अवसर पर सामूहिक श्रमदान के द्वारा गंगा की सफाई भी की गई।

इस वर्ष दिल्ली में गणतंत्र दिवस पर आयोजित मुख्य परेड में विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों—कु० कमल रानी एवं रितेश कुमार ने हिस्सा बनकर विश्वविद्यालय का ही नहीं, बल्कि उत्तराखंड का मान भी बढ़ाया। विश्वविद्यालय के कुलाधिपति श्रद्धेय डॉ० प्रणव पण्ड्या जी एवं प्रतिकुलपति जी ने इन विद्यार्थियों को ढेर सारी बधाइयाँ एवं शुभकामनाएँ दीं। उल्लेखनीय है कि विगत पाँच वर्षों से राष्ट्रीय गणतंत्र दिवस की परेड में उत्तराखंड के प्रतिनिधित्व हेतु मात्र देव संस्कृति विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों का चयन होता रहा है।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय की बढ़ती पहचान के क्रम में इसके एवं एम्स, ऋषिकेश के मध्य शैक्षणिक गतिविधियों, शोधकार्यों एवं ग्रामीण विकास कार्यक्रमों को केंद्र में रखते हुए एक अनुबंध का होना भी एक ऐतिहासिक घटना रही। एम्स के निदेशक एवं सीईओ प्रो० रविकांत एवं देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी ने इस एमओयू पर संयुक्त हस्ताक्षर किए। इस एमओयू से देव संस्कृति विश्वविद्यालय एवं एम्स के मध्य शैक्षणिक आदान-प्रदान को बढ़ावा मिलेगा। साथ ही शोध, ग्रामीण चिकित्सा विकास एवं प्रशिक्षण कार्यक्रमों में विद्यार्थियों, शिक्षकों एवं चिकित्सकों का विभिन्न स्तर पर परस्पर आदान-प्रदान संभव होगा।

एम्स के निदेशक पदमश्री प्रो० रविकांत ने बताया कि एलोपैथी चिकित्सा पूर्णतः विज्ञानसम्मत होते हुए भी अपने प्रभाव में सीमित है। इसमें रोग का उपचार लगभग 23 प्रतिशत ही हो पाता है, शेष 77 प्रतिशत रोग का उपचार वैकल्पिक चिकित्सा से ही संभव है। एम्स की एलोपैथी चिकित्सा के क्षेत्र में एवं देव संस्कृति विश्वविद्यालय की योग, आयुर्वेद एवं वैकल्पिक चिकित्सा के क्षेत्र में विशेषज्ञता है। अतः दोनों संस्थान मिलकर रोगनिदान में एक प्रभावी भूमिका का निर्वहन कर सकते हैं। एम्स के चिकित्सक विभिन्न रोगों के उपचार का प्रशिक्षण तो प्राप्त करते ही हैं, साथ ही देव संस्कृति विश्वविद्यालय से स्वस्थ एवं निरोगी जीवन का प्रशिक्षण प्राप्त कर अपनी उपयोगिता को और अधिक बढ़ा पाएँगे।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति ने इस अवसर पर कहा कि परमपूज्य गुरुदेव का सदा से यह चिंतन रहा था कि यदि मनुष्य को रोगमुक्त करना है तो उसके लिए एक समग्र उपचार पद्धति को विकसित करना अत्यंत आवश्यक है। ऐसा तभी संभव है, जब हम भारतीय विरासत की चिकित्सा पद्धतियों को समसामयिक परिप्रेक्ष्य में रखते हुए एक ऐसी चिकित्सा पद्धति को विकसित करें, जिसका उद्देश्य मात्र शारीरिक रोगों का निदान न होते हुए, एक स्वस्थ जीवनशैली का विकास करना भी हो। उन्होंने कहा कि इस अनुबंध के द्वारा इस उद्देश्य को पूरा किया जा सकेगा। ❑

प्रवेश सूचना–देव संस्कृति विश्वविद्यालय

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा मान्यता प्राप्त, राष्ट्रीय मूल्यांकन एवं प्रत्यायन परिषद् द्वारा प्रत्यायित एवं आईएसओ 9001:2008 द्वारा प्रमाणित

सत्र : 2018–19

स्नातक पाठ्यक्रम — 03 वर्ष

अनिवार्य विषय—1.जीवन प्रबंधन 2.वैज्ञानिक अध्यात्म 3. अँगरेजी संवाद/संस्कृत संवाद

- बी.ए. (वैकल्पिक विषयों के साथ) — 03 वर्ष
- बी.ए. (पत्रकारिता एवं जनसंचार) — 03 वर्ष
- बी.एस–सी. (एनीमेशन) — 03 वर्ष
- बी.एस–सी. (इन्फॉर्मेशन टेक्नोलॉजी) — 03 वर्ष
- बी.एस–सी. (पर्यावरण विज्ञान) — 03 वर्ष
- बी.सी.ए. (बैचलर ऑफ कंप्यूटर एप्लीकेशन) — 03 वर्ष
- बी.बी.ए. (टूरिज्म एंड ट्रेव्हल मैनेजमेंट) — 03 वर्ष
- बी.आर.एस. (बैचलर ऑफ रूरल स्टडीज) — 03 वर्ष

बी.एड. पाठ्यक्रम — 02 वर्ष

- बी.एड. (बैचलर ऑफ एजूकेशन)

स्नातकोत्तर उपाधि पाठ्यक्रम — 02 वर्ष

1. एम.ए./एम.एस–सी. (नैदानिक मनोविज्ञान)
2. एम.एस–सी. (मानव चेतना एवं योग विज्ञान)
3. एम.एस–सी. (व्यावहारिक योग एवं मानव उत्कर्ष)
4. एम.ए. (व्यावहारिक शिक्षा)
5. एम.ए. (पत्रकारिता एवं जनसंचार)
6. एम.ए. (भारतीय इतिहास एवं संस्कृति)
7. एम.ए. (संस्कृत)
8. एम.ए. (हिंदी)
9. एम.ए. (संगीत–गायन)
10. एम.एस–सी. (योग विज्ञान एवं समग्र स्वास्थ्य)
11. एम.एस–सी. (पर्यावरण विज्ञान)
12. एम.एस–सी. (एप्लाइड मेडिसिनल प्लांट साइन्सेज)
13. एम.बी.ए. (टूरिज्म एंड ट्रेव्हल मैनेजमेंट)
14. एम.सी.ए. (मास्टर ऑफ कंप्यूटर एप्लीकेशन) — 03 वर्ष

एम. फिल. (पत्रकारिता एवं जनसंचार) — 01 वर्ष

1 वर्ष + अधिकतम 6 माह, लघु शोध प्रबंध हेतु

डिप्लोमा पाठ्यक्रम — 01 वर्ष

1. पी.जी.डिप्लोमा, मानव चेतना, योग एवं वैकल्पिक चिकित्सा
2. पी.जी.डिप्लोमा, धर्म विज्ञान एवं मनोवैज्ञानिक परामर्श
3. पी.जी.डिप्लोमा, आयुर्वेद एवं स्वास्थ्य
4. एडवान्स डिप्लोमा इन विजुअल इफेक्ट 3D कंप्यूटर ग्राफिक्स — 2 वर्ष

प्रमाणपत्र पाठ्यक्रम — 06 माह

1. धर्मविज्ञान
2. योग एवं वैकल्पिक चिकित्सा
3. पशु प्रजनन एवं प्रबंधन

विवरण पुस्तिका/आवेदन फार्म हेतु

—ऑनलाइन आवेदन–http:www.dsvv.ac.in (रुपये 750/-)*

—वेबसाइट से डाउनलोड–फार्म भरकर डाक द्वारा भेजें (रुपये 750/-)*

—हाथोहाथ–विश्वविद्यालय के काउंटर से निर्देश पुस्तिका प्राप्त करें (रुपये 200/-)**.

—डाक से निर्देश पुस्तिका मँगाई जा सकती है (रुपये 250/-)

(ड्राफ्ट देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार के नाम से देय होगा)

—* रु. 550/-प्रवेश परीक्षा शुल्क पहले से शामिल है

—** रु. 550/—प्रवेश परीक्षा शुल्क भरे हुए आवेदन पत्र के साथ जमा किया जाना है।

प्रत्येक आवेदक एक ही पाठ्यक्रम के लिए आवेदन कर सकता है।

प्रवेश परीक्षा के केंद्र

(1) हरिद्वार (उत्तराखंड)	(2) भोपाल (म.प्र.)
(3) नोएडा (उ.प्र.)	(4) जोधपुर (राजस्थान)
(5) पटना (बिहार)	(6) कोलकाता (प.बंगाल)
(7) राजनांदगांव (छ.ग.)	(8) लखनऊ (उ.प्र.),
(9) वडोदरा (गुज०)	(10) नागपुर (महाराष्ट्र)

पत्राचार का पता

कुलसचिव,
देव संस्कृति विश्वविद्यालय
गायत्रीकुंज–शांतिकुंज, उत्तराखंड–249411

संपर्क सूत्र

दूरभाष (01334) 261367, 261485 (Ext. 5409, 5436)
मोबाइल : 9258369724, 9258360930, 9258369615
Web: www.dsvv.ac.in
Email : admissions@dsvv.ac.in

▶शक्ति संरक्षण वर्ष◀

युग निर्माण हेतु सप्तसूत्री योजना

मनुष्य के जीवन में अनेक तरह से व अनेक तरह के सौभाग्य आते हैं। सौभाग्य उन्हें कहा जा सकता है, जिनके लिए मनुष्य स्वयं को सराहता है कि एक बार हमारे जीवन में एक इस तरह का सुअवसर आया था, और फिर जब वह सौभाग्य का क्षण आकर चला जाता है तो उसे लोग वर्षों तक याद रखते हैं, अपनी स्मृतियों में सहेजकर, सँभालकर रखते हैं। राष्ट्रपति से मिले सम्मान, महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों की प्राप्ति, प्रोन्नति इत्यादि व्यक्तिगत सौभाग्यों की श्रेणी में आते हैं—इनका मूल्य समूह के लिए या समाज के लिए हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता है, परंतु कुछ सौभाग्य ऐसे होते हैं जिन्हें सामूहिक सौभाग्यों की श्रेणी में रखा जा सकता है।

ग्वाल-बालों को, गोपियों को, पांडवों को क्या यह सौभाग्य नहीं मिला था कि उन्हें भगवान कृष्ण के साथ घूमने का, खेलने का, मक्खन चुराने का व राक्षसों को मारने का अवसर मिला? शबरी, गिलहरी, केवट को क्या यह सौभाग्य नहीं था कि उन्हें भगवान राम को स्पर्श करने का, साक्षात् देखने का अवसर मिला? यह सौभाग्य एक ऐसा सौभाग्य है, जो कई सहस्रों युगों में एक बार घटा करता है, रोज-रोज नहीं घटता। राष्ट्रीय या अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मिलने वाले पुरस्कार तो थोड़े दिन बाद पुराने हो जाते हैं, प्रोन्नतियाँ भी मिलने के बाद साथ जुड़े भावातिरेक को खो बैठती हैं, परंतु साक्षात् भगवान के साथ घूमने-फिरने और उन्हें नजदीक से देखने का सौभाग्य इन सारे वैयक्तिक सौभाग्यों से बढ़कर एवं ऊपर उठकर है।

इन उद्धरणों को यहाँ देने का तात्पर्य मात्र इतना है कि गायत्री परिजनों में से अनेकों ऐसे हैं, जिन्हें परमपूज्य गुरुदेव एवं परम वंदनीया माताजी को निकट से देखने का एवं कुछ ऐसे संस्मरणों का साक्षी बनने का अवसर मिला, जो विरलों को मिल पाता है। हममें से अनेकों ऐसे सौभाग्यशाली परिजन हैं, जो दिव्य गुरुसत्ता के अपनेपन, उनकी आत्मीयता, उनके प्रेम, उनकी सहजता, उनकी सरलता व उनकी सुलभता को निकट से अनुभव कर सके। संभवतया ऐसा सौभाग्य दोबारा इस युग में किसी अन्य को नसीब न हो सकेगा। स्वयं भगवान हमारे मध्य परमपूज्य गुरुदेव एवं परम वंदनीया माताजी का रूप लेकर के आए और हमें अपने लीला सहचरों के रूप में उनके साथ आने का सौभाग्य प्रदान किया। जिन्हें यह सुअवसर प्राप्त न भी हो सका उनका सौभाग्य भी कम नहीं है, क्योंकि वे भी महाकाल की इस दिव्य योजना के सहचरों के रूप में उन्हीं दिव्य सत्ता का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं।

आज प्रत्येक परिजन को उनका यह सौभाग्य याद दिलाने के पीछे मूल उद्देश्य यही है कि हर गायत्री परिजन को उसका सच्चा स्वरूप याद दिलाया जा सके। परमपूज्य गुरुदेव एवं परम वंदनीया माताजी के लीला सहचरों में से कोई भी हनुमान से कम स्तर का नहीं है, कोई बहन दुर्गा से कम स्तर की नहीं कही जा सकती। यदि गायत्री परिजन अपने सच्चे स्वरूप को याद कर लें तो वे विश्व को हिलाकर रख सकते हैं और वर्तमान परिस्थितियों में तो उन्हें अपने सौभाग्य व उत्तरदायित्व को याद करने की आवश्यकता वैसी ही है, जैसी समुद्र तट पर किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर खड़े हनुमान जी को समुद्र लाँघने के लिए आ पड़ी थी।

आज मानवता अपना पथ भूलकर किसी औचित्यहीन लक्ष्य की ओर बढ़ती दिखाई पड़ती है। परमपूज्य गुरुदेव ने अपने साहित्य में लिखा है कि मनुष्य अचिंत्य चिंतन अर्थात न सोचने योग्य चिंतन के प्रहार से कुछ इस कदर आहत है कि धर्म, न्याय का पथ छोड़कर निकृष्ट चिंतन व पतित आचरण में संलग्न दिखाई पड़ता है। इन आपदा भरी परिस्थितियों में हमारे जीवन की संपूर्ण ऊर्जा इसी महाभारत को लड़ने में लगाने की आवश्यकता है। युग निर्माण का कार्य एक व्यक्ति का नहीं है, बल्कि इस जिम्मेदारी को हर जागरूक व्यक्ति को साथ-साथ मिलकर उठाने की आवश्यकता है। यह समय हर गायत्री परिजन को अपने उत्तरदायित्वों को याद करने का समय है।

युद्ध होने वाला होता है तो उसकी तैयारियाँ उससे पहले ही शुरू हो जाती हैं। हथियारों के निर्माण से लेकर रसद की व्यवस्था जुटाने तक और सैनिकों की छुट्टियाँ रद्द करने से लेकर चिकित्सालयों में जरूरी दवाएँ इकट्ठी करने तक हर तरह की व्यवस्थाएँ जुटाई जाने लगती हैं, व्यक्ति, परिवार, समाज व राष्ट्र—हरेक की मनःस्थिति युद्ध की तैयारी की हो जाती है। वर्तमान समय को भी किसी युद्ध से कम करके नहीं आँका जाना चाहिए, जहाँ देवत्व व असुरता के मध्य युद्ध के समकक्ष ही परिस्थितियाँ बनी हुई हैं। मानवता का उज्ज्वल भविष्य, देवत्व की विजय पर ही टिका हुआ कहा जा सकता है।

वर्तमान परिस्थितियों की विभीषिकाएँ मानवीय चिंतन की निकृष्टता, क्षुद्रता व स्वार्थपरता से उपजी हैं एवं इनके परिणामस्वरूप आसुरी व्यक्तित्वों की भीड़, समाज के हर क्षेत्र में लगी देखी जा सकती है। स्पष्ट है कि यदि युद्ध का क्षेत्र मनुष्य की मनोभूमि एवं व्यक्तित्व में है तो उसे निरस्त करने के प्रयासों को भी उसी स्तर पर करना जरूरी है। यदि व्यक्तित्व धारदार होंगे, दमदार होंगे तो उनके अंदर से उभरा साहस, विवेक, पवित्रता व प्रखरता—स्वतः ही इस अंधकार भरे समय को, प्रज्ञा से सिक्त आलोक में बदल देंगे। उनका व्यक्तित्व ही देवत्व के आगमन का आधार बनेगा। यह कार्य और कोई कर सके या न कर सके, परंतु अपने जीवन में सौभाग्य लेकर जन्मे गायत्री परिजनों के द्वारा सहजता से संभव है।

आसुरी आक्रमण का निराकरण करने के लिए देवत्व के गुणों से आपूरित व्यक्तित्वों की आवश्यकता है—इस तथ्य पर किसी को शंका करने की तनिक भी जरूरत नहीं है। हमारे व्यक्तित्वों को इस स्तर का बनाने के लिए परमपूज्य गुरुदेव ने वर्षों पूर्व एक सप्तसूत्री योजना दी थी, जिसको आज के परिप्रेक्ष्य में अत्यंत गंभीरता के साथ आत्मसात् करने की आवश्यकता है। इसमें से पहला सूत्र—**गायत्री-उपासना में निरंतरता** लाने का है। बिना निष्ठा को गहन एवं तीव्र किए ऐसा कर पाना संभव नहीं है।

यह वर्ष वैसे भी शक्ति संरक्षण को समर्पित वर्ष है और इस वर्ष में निष्ठावान साधकों को अपनी गायत्री-उपासना में और भी अधिक तीक्ष्णता व तीव्रता लाने की आवश्यकता है, ताकि देवत्व की विजय के लिए प्रमुख अस्त्र—तपोमय पुण्य को ज्यादा-से-ज्यादा मात्रा में संरक्षित किया जा सके। जो अँधेरा धरती के वातावरण पर व्याप्त है, उसे व्यापने में वर्षों लग गए तो उसे हटाने के लिए भी लाखों साधकों के सम्मिलित प्रकाश प्रहार की जरूरत आ पड़ी है। नित्य गायत्री मंत्रजप की कम-से-कम तीन मालाएँ, महामृत्युंजय जप की एक माला, परमपूज्य गुरुदेव द्वारा कराया गया सविता देवता का ध्यान—ये कुछ ऐसी साधनाएँ हैं, जिन्हें साँस लेने-छोड़ने, भोजन करने-पानी पीने जैसी जीवनाधार आवश्यकताओं के रूप में हममें से प्रत्येक को अपने दैनिक क्रम में सम्मिलित कर ही लेना चाहिए। आँधी आए या तूफान आए, जीवन रहे या तिरोहित हो जाए, परंतु साधना का यह क्रम किसी भी अवस्था में छूटना नहीं चाहिए—इस दृढ़ता के साथ की गई नित्य उपासना ही परिष्कृत व्यक्तित्व को जन्म दे सकती है।

स्वयं की साधना में नियमितता लाने के साथ-साथ साधनात्मक मनोभूमि बनाने के ऐसे ही प्रयास को करने के लिए परिवार के प्रत्येक सदस्य को प्रेरित करने की भी तीव्रतम आवश्यकता है। गायत्री परिजन, परिवार के हरेक सदस्य को प्रेरित करें कि वो कम-से-कम दिन में एक बार न्यूनतम 24 गायत्री मंत्र, माँ गायत्री एवं परम पूज्य गुरुदेव तथा परम वंदनीया माताजी के चित्र के सम्मुख आकर अवश्य बोलें। यदि घर में सभी का सामूहिक प्रार्थना, आरती करने का क्रम दैनिक रूप से चलाया जा सके तो इससे ज्यादा श्रेष्ठ कुछ और नहीं कहा जा सकता है। व्यक्ति निर्माण ही परिवार निर्माण का आधार है और परिवार निर्माण ही समाज निर्माण की धुरी है। यदि सर्वत्र साधनात्मक वातावरण को जन्म देना है तो इस पहले सूत्र पर अत्यंत गंभीरता के साथ चिंतन-मनन व अमल करने की आवश्यकता है।

इस योजना का दूसरा सूत्र **व्यक्तित्व के विकास** के लिए निरंतर किया जाने वाला प्रयास है। बिना निष्पक्ष आत्मसमीक्षा के ऐसा कर पाना संभव नहीं है। परमपूज्य गुरुदेव ने इस हेतु दो सूत्र दिए थे—चिंतन एवं मनन। हमारे जीवन की अब तक की दिशा-प्रगति की समीक्षा व मूल्यांकन करना 'चिंतन' एवं आने वाले समय के लिए सम्यक योजना बनाना 'मनन' के अंतर्गत आते हैं। अपने व्यक्तित्व के हर पक्ष पर चिंतन-मनन करने से एवं इस बात का मूल्यांकन करने से कि हम क्या सोचकर गायत्री परिवार का अंग बने थे और आज क्या कर रहे हैं—अपनी प्रगति की सटीक समीक्षा कर पाना संभव हो पाता है। दिन में कम-से-कम पाँच मिनट एकांत में, परमपूज्य गुरुदेव व परम वंदनीया माताजी को साक्षी

मानकर हममें से प्रत्येक को निकालने चाहिए, ताकि हमारे व्यक्तित्व में सुधार व विकास की प्रक्रियाएँ सतत व अबाधित रूप से चलती रहें।

तीसरा सूत्र—**परिवार के समग्र आध्यात्मिक विकास** के लिए प्रयास करना है। दूसरों को सिखाते-बताते रहने, प्रचारात्मक अभियानों को निरंतर करते रहने से कभी-कभी हम अपने ही परिवार के आध्यात्मिक विकास की ओर दृष्टि डालने से वंचित रह जाते हैं। यदि हमने सद्विचारों के विस्तार का प्रयास समाज में पूर्ण मनोयोग से किया, परंतु अपने परिवार तक उस चिनगारी को पहुँचाने में पीछे छूट गए तो उससे लक्ष्य की पूर्ति संभव न हो सकेगी और हमारा स्वयं का परिवार ही क्रांति से अछूता रह जाएगा। सामाजिक आयामों में उत्कृष्टता का प्रचार करते समय हमें सदैव यह ध्यान रखना चाहिए कि हमारे परिवार के सभी सदस्यों में भी शिष्टता, संस्कार, आस्था, मूल्य उतनी ही समग्रता के साथ आ सकें, जितनी की अभीप्सा हम अन्य लोगों से करते हैं।

परमपूज्य गुरुदेव की इस योजना का चौथा चरण घर-घर में **स्वाध्याय की परंपरा** को विकसित करना है। छोटे बच्चों को कम-से-कम पूज्य गुरुदेव व वंदनीया माताजी के जीवन चरित्र से अवगत करा देना भी स्वाध्याय के क्रम में गिना जा सकता है। जो थोड़ा बड़े व परिपक्व हो गए हैं, उन्हें परमपूज्य गुरुदेव की आत्मकथा—हमारी वसीयत और विरासत पढ़ने को दी जा सकती है। जिन्हें कथापरक साहित्य अच्छा लगता है उन्हें प्रज्ञापुराण, बाल निर्माण की कहानियाँ दी जानी चाहिए। घर की बहनों को वेब स्वाध्याय करने के लिए प्रेरित किया जा सकता है। समर्पित व निष्ठावान परिजनों को पूज्य गुरुदेव द्वारा रचित साहित्य की कम-से-कम सौ पुस्तकें तो अच्छे से पढ़ी होनी ही चाहिए तथा उनके नित्यप्रति के स्वाध्याय में अखण्ड ज्योति को पढ़ना भी अनिवार्य रूप से शामिल होना चाहिए।

इस योजना का पाँचवाँ चरण—**हरीतिमा संवर्द्धन व स्वावलंबन** का है। घर के सदस्यों के जन्मदिन पर एक-एक पौधे का आरोपण एवं जीवन भर उसका वृक्ष गंगा अभियान के तहत संरक्षण एक औसत परिवार के द्वारा ही हजारों वृक्षों को संरक्षित करा देगा। सर्वविदित है कि एक वृक्ष—दस पुत्रों के समान है तो हजारों वृक्षों का आरोपण—लाखों वंशजों के रूप में एक ऐसी विरासत छोड़ जाएगा, जिसको अभिनव व अनुपम ही कहते बन सकेगा। घर की बहनें अपने-अपने घरों में तुलसी का एक पौधा तो लगा ही सकती हैं और यदि घर-घर में शाक-सब्जियों को लगाने का क्रम चल निकले तो हरीतिमा संवर्द्धन एवं स्वावलंबन—'एक पंथ दो काज' जैसे महान उद्देश्य को प्राप्त कर पाना संभव हो सकेगा। जो थोड़े जागरूक एवं सक्षम हैं, वो एक बड़े स्वावलंबन केंद्र की स्थापना का प्रयास तथा एक बड़े क्षेत्र को हरा करने का प्रयास अपने हाथों में ले सकते हैं।

छठा सूत्र—अवांछनीयता उन्मूलन के लिए स्वयं में अपेक्षित **साहस को उभारने का** है। शक्ति संरक्षण वर्ष में संकल्प व साहस का उदय ही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण लक्ष्य कहे जा सकते हैं। यदि अवांछनीयता से भरी इन परिस्थितियों को सदा के लिए समाप्त करना है तो अपने मन में उसके लिए योग्य साहसी मनोभूमि को उत्पन्न करना एक अनिवार्य आवश्यकता के रूप में लिया जा सकता है।

अंतिम सूत्र—परमपूज्य गुरुदेव के **विचारों को जन-जन तक पहुँचाना** है एवं जनसामान्य को उनके विराट स्वरूप से परिचित कराना है। हर माह इस बात का मूल्यांकन किया जाए कि हम कितने नए लोगों तक पूज्य गुरुदेव के विचारों व योजनाओं को पहुँचाने में सफल हो सके एवं कितनों को हम शांतिकुंज, युगतीर्थ जाने के लिए प्रेरित कर सके। जितने कानों तक यह बात सुनाई जा सके और जितनी आँखों तक गुरुदेव के विचार पहुँचाए जा सकें, उतने ही सदस्य इस महाभियान में देवत्व के सहयोगी-सहकार की भूमिका निभाते नजर आएँगे एवं यही हमारा मुख्य लक्ष्य उद्देश्य है।

परमपूज्य गुरुदेव एवं परम वंदनीया माताजी से सशरीर मिलना या उनकी योजना का अंग बनना इस युग के महान सौभाग्यों में से एक है, परंतु यह महानतम सौभाग्यों में तब ही बदल सकेगा, जब हम हमारे से अभीष्ट उत्तरदायित्वों का कुशलतापूर्वक निर्वहन कर सकेंगे। निकृष्ट चिंतन के आघातों से कराहती मानवता, देवत्व की श्रद्धासिक्त धार की प्रतीक्षा करती दिखाई पड़ती है और उसे ऐसा पवित्र सहयोग दे पाने की शक्ति मात्र परिष्कृत व्यक्तित्वों में है। व्यक्तित्व परिष्कार के लिए परमपूज्य गुरुदेव द्वारा प्रदत्त इन सप्तसूत्रों को अपने जीवन में उतार लेना ही हमारे जीवन का एकमात्र लक्ष्य कहा जाना चाहिए। ❑

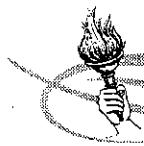

युग प्रज्ञा का आह्वान

यह चरित्र पावन हो सबका वह समाज निर्माण करो।
युवाओ! जिम्मा है तुम पर बढ़-चढ़कर बलिदान करो॥ 1॥

वायु, जल, आहार आदि में जहर भरा भरपूर है,
अणु, आयुध, जनसंख्या वृद्धि ध्वंस कहाँ अब दूर है,
चिंतन और चरित्रहीन मानव कितना मगरूर है,
क्रुद्ध प्रकृति के रौद्र रूप का आता वक्त जरूर है,

नव युग सृजन हेतु युगशक्ति का अवतरण महान करो।
युवाओ! जिम्मा है तुम पर बढ़-चढ़कर बलिदान करो॥ 2॥

लोभ-मोह की अनियंत्रित लिप्साओं को तुम रोक लो,
निज साधन संतुष्टि से ऐलान-ए सीना ठोक लो,
स्वार्थ साधना की विषबेलें दुर्गतियों का कारण है,
मृगतृष्णा में भटके जीवन में सन्मतियों का क्षण है,

सांसारिक कर्त्तव्यों के संग आध्यात्मिक उत्थान करो।
युवाओ! जिम्मा है तुम पर बढ़-चढ़कर बलिदान करो॥ 3॥

नैतिक मर्यादा में धन का अर्जन हो, भंडारण हो,
संयम से गतिशील मनुज का शारीरिक निर्धारण हो,
श्रेष्ठ विचारों से परिपूरित जन के प्रमुख समागम हो,
ब्रह्मबलों के साथ आत्मबल का संपूर्ण शुभागम हो,

अपने पूर्ण बलों से पीड़ित को सहयोग प्रदान करो।
युवाओ! जिम्मा है तुम पर बढ़-चढ़कर बलिदान करो॥ 4॥

अध्ययन गहन शास्त्र लिखने का होता मूलाधार है,
ईश्वर का अस्तित्व श्रेष्ठता का होता भंडार है,
देवमानवों के स्वरूप खुद को स्थापित करना है,
अग्रदूत की भाव-भूमिका में इस धरा विचरना है,

गुरु अनुशासन में तत्पर युग प्रज्ञा का आह्वान करो।
युवाओ! जिम्मा है तुम पर बढ़-चढ़कर बलिदान करो॥ 5॥

—शोभाराम शशांक